छत्तीसगढ़ी अभिव्यक्ति - 2004

23 और 24 मार्च

छत्तीसगढ़ी भाषा-व्यंजकता, छत्तीसगढ़ के खेल, बाल-गीत, व्यंजन
एवं छत्तीसगढ़ की संत परंपरा पर केन्द्रित
राज्य स्तरीय संगोष्ठी

छत्तीसगढ़ शासन, संस्कृति विभाग

छत्तीसगढ़ी अभिव्यक्ति - 2004

छत्तीसगढ़ी भाषा-व्यंजकता, छत्तीसगढ़ के खेल, बाल-गीत, व्यंजन एवं
छत्तीसगढ़ की संत परंपरा पर केन्द्रित
राज्य स्तरीय संगोष्ठी

छत्तीसगढ़ शासन, संस्कृति विभाग

छत्तीसगढ़ी अभिव्यक्ति : 2004

अनुक्रमणिका

छत्तीसगढ़ी भाषा-व्यंजकता

1. डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा 03-06
2. डॉ. बिहारीलाल साहू 07-10
3. डॉ. विनयकुमार पाठक 11-12

छत्तीसगढ़ के खेल, बाल-गीत एवं व्यंजन

1. श्री चंद्रशेखर चकोर 13-14
2. श्री प्रताप ठाकुर 15-20
3. श्रीमती शान्ति यदु 21-22
4. श्रीमती मृणालिका ओझा 23-24
5. डॉ. अनसूया अग्रवाल 25-29
6. श्रीमती शकुन्तला तरार 30-31
7. श्रीमती निरूपमा शर्मा 32-35
8. डॉ. रत्नावली सिंह 36-39
9 श्री रसिक बिहारी अवधिया 40-40

छत्तीसगढ़ की संत परंपरा

1. डॉ. सत्यभामा आड़िल 41-49
2. डॉ. देवीप्रसाद वर्मा 50-53
3. आचार्य रमेन्द्र रघुनाथ मिश्र 54-54
4. श्री परदेशीराम वर्मा 55-57

संगोष्ठी के सत्र

1. कार्यक्रम की रूपरेखा 58-58

छत्तीसगढ़ी भाषा में व्यंजना

- डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा

अमिधा तथा लक्षणा अपने अर्थ का बोध कराने के बाद जब विरत हो जाती है, तब जिस शब्द शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजना शक्ति अथवा व्यापार कहते हैं। व्यंग्यार्थ के लिए ध्वन्यार्थ, सूच्यार्थ, आक्षेपार्थ, प्रतीयमानार्थ आदि शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

अमिधा शब्द का साक्षात् सांकेतिक अर्थ बतलाती है, और लक्षणा मुख्यार्थ के असिद्ध होने पर रूढ़ि के कारण अथवा किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ से संबंधित किसी अन्य अर्थ को लक्षित कराती है, किन्तु जब अमिधा और लक्षणा अभीष्ट अर्थ को स्पष्ट करने में असमर्थ रहती है, तो व्यंजना शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। अमिधा और लक्षणा का संबंध केवल शब्द से होता है, किन्तु व्यंजना शब्द पर ही नहीं, वरन् अर्थ पर भी आधारित रहती है।

व्यंजना शक्ति के दो प्रधान भेद हैं- 1. शाब्दी व्यंजना तथा 2. आर्थी व्यंजना। शब्द पर आधारित व्यंजना अभिधामूला तथा लक्षणामूला होती है। जैसे-

आमा ल टोरे रे खाहौं कहिके ।

दगा म डारे बइहा आहौं कहिके ।।

ददरिया बइहा का अर्थ पागल (अमिधा) नहीं होता, उसका अर्थ प्रेम में डूबा प्रियतम है, और आमा-फल ही नहीं यौवन के उभार को संकेतित करता है मतलब यह कि अभिसारिका अब अनुशयाना नायिका अपने प्रियतम को उलाहना दे रही है, मेरे यौवन के सहचर, प्रियतम तुमने मेरे प्रेम, अभिलाषा, लालसा को छूकर जगा दिया, और मैं प्रतीक्षा करती रही, ओ निर्मम, तुम नहीं आये। यहां बइहा प्रिय का गोपनीय संबोधन है, और नायिका युवती नहीं योबिता है, मोटियारी है। आर्थी व्यंजना का उदाहरण प्रस्तुत है-

झनि जा झनिजा पनिया ठाढ़ मझनिया ।

डंगनी विथ डोलयरे तोर कन्हिया ।।

ओ री पनिहारिन ठीक भरी दोपहरी में पानी भरने के लिए मत जा। तेरी कमर तो मछली पकड़ने की डंगनी के समान लचक रही है। किन्तु ददरिया में प्रेमी अभिसार के लिए इशारा कर रहा है- कड़ी दोपहरी में जब सन्नाटा रहेगा तब पानी भरने का बहाना करके तू बस्ती के बाहर तालाब में मिलना अरी मोटियारी तेरी कमर सचमुच लचकदार है- सच ही तू कोमलांगी, कमनीय कामिनी है रे।

छत्तीसगढ़ी गद्य में भी व्यंजना कम नहीं-

1. "छत्तीसगढ़ी दाई के दूध के नाव ए, अऊ बड़े दाई के दुलार ए, बूढ़ी दाई के चोन्हा चुम्मा ए, बबा के मया ए, सुआरी के सेंदुर ए, बहिनी के राखी ए, गुइयाँ के भेजली ए।

छत्तीसगढ़ी अइसन भाखा ए, जउन हिन्दी मधुर मिलके राष्ट्रीयता बनाथे, तभो ले वोकर अपन विन्हारी अपन संग्या, अपन सर्वनाम हावय। छत्तीसगढ़ी भाखा के अपन इतिहास, अपन परंपरा अऊ संस्कृति म साधु संत के सांस धड़कत हे, वोकर पानी पसीना पुत्र के पदुम पराग हे।

छत्तीसगढ़ वो सबरी हे, जउन हिन्दी के राम ल बनबोईर के अम्मठ, गुरतुर संवाद ल चिखाइस। तुलसी बबा के रमायण एकर साखी हे।"

2. "छत्तीसगढ़ मोर दाई माई ए.... मैं वोकर दुलरूवा बेटवा .... पइयां-परत हौं .... जनम जनम के जनम भूमि, जियत भर के करम भूमि, पूजा-पाठ के धरम-भूमि, अउ सॉस सिरागे त मरन भूमि, मरघट ले लेके पनघट तक, पनिहारिन ले लेके सुआरी तक, परसार ले ओसारी तक, पिंउरी ले रंड़सारी तक, नांगर ले तुतारी तक, उन्हारी ले सियारी तक, बासी ले बियारी तक, तरवार ले कटारी तक, मूढर ले लेके खोल दुवारी तक, तोरन ले लेके चउॅक कुसियारी तक, बहुरिया ले कुंवारी तक, सुखिया ले दुखियारी तक, सूपा ले लेके कलारी तक, बबा पुरखा ले महतारी तक, बावा बैरागी ले संसारी तक, गोरी ले कारी तक, अंगना ले लेके बारी तक, बरा ले लेके चिला सोंहारी तक, होरी ले लेके हरेली तक हमर छत्तीसगढ़ के चिन्हारी ए। (घर-दुलार तोर, डेहरी मं गोड़ झन धखे-अइसनहा झन होवय।)

छत्तीसगढ़ के अमरइया मं, तरइया म कोइली टेही पारत हे, बसंती बड़ोरा बिजनी डोलावत हे, दंतेस्वरी दाई के दया ले, महामाया के मया ले, डिड़िनदाई के दया ले, अरपा नदिया ले लेके महानदी तक, सतखंडा महल ले लेके कुरिया कुंदरा तक, जंगल ले मंगल तक, बिहाव ले लेके बुंदा तक, फूल के डार ले खेत-खार तक, सोम ले इतवारी तक, पइरी ले लेके ढार तक, पंडा बिन पिंडा नहीं, डंडा बिन डंडा नहीं, अंड़वा बिन कुकरी नहीं, कुबरी बिन डोकरी नहीं, पानी बिन नदिया नहीं, लौठी बिन पहटिया नहीं, चंदा बिन रथिया नहीं, सुरूज बिन दिनमान नहीं, सोना बिन धनवान नहीं, बांस बिन विमान नहीं, भगत बिन भगवान नहीं .....।"

छत्तीसगढ़ ल सोसक मन चुहक डारिन। गरीब कमिया, कमेलिन लंग न कमर भर धोती हे, न पेट भर रोटी हे। डोंगरी-खार के वनवासी-टूरा-टूरी-मोटियारी मन के फोटो ल लेके परदेसी मन मजा लेथें। सच्ची कइहा त खार-पहार के बेटी-धरती के नोनी, छत्तीसगढ़ के दुलौरिन-ठ्ठठा-मसखरी के मोटियारी नो हे, वो त् सीता ए, जसोदा ए, राधा ए, मीरा ए, देवी ए, दाई ए, माता ए, महतारी ए, बेटी ए, बहुरिया ए, वो हर कमल-खोखमा, चंदा-चंदैनी नो हे-टेसू के फूल ए, जउन खार-दइहान म, कांटा-खूंटी म डोंगरी-पहार म-फूलथे, फरथे। खोर्रा खटिया, कांदी के कुरिया म पेज-पसिया, कोदो-कांदा, बासी-बोरे-ये सब वोकर जिनगी-जिनगानी हे।

छत्तीसगढ़ के चारों कती मौत हे, धूंकी गर्रा हे, जंगल के सुन्न सांय सांय हे, डोंगरी के डर हे, बिखहर सांप के बिल हे, बघवा भालू-जौंहर काल हें- फेर दुकाल अकाल, भूत-परेत, बघवा मसान, मटिया-मिरचुक, बरमराच्छस, भैंसासुर, धुॅकीदाई, महामारी हे, भारी कलकिथवा म वो हर गाथे, बजाथे, होम-धूप-देथे, पूजा-पाठ करथे।"

छत्तीसगढ़ लोकोक्तियों से अधिक छत्तीसगढ़ी मुहावरों में व्यंजना शक्ति निहित है। लोकोक्ति या कहावतें या छत्तीसगढ़ी मुहावरों में व्यंजना शक्ति निहित है। लोकोक्ति या कहावतें या छत्तीसगढ़ी हाना में अनुभव वृद्ध लोक द्वारा कही हुई अनोखी या महत्व की बात है, जो कहते-कहते कहावत बन जाती है। यह कथावत भी है जिसके पीछे कोई कथा रहती है, जिसे हामी-हुॅकारू देने वाला हां-ना कहते सुनता है। तो कोई पद रचना अपने अभिधार्थ को छोड़कर अलग किसी अर्थ को व्यक्त करती है, मुहावरा कहलाती है। छत्तीसगढ़ी भाषा में हाना तुक और विशेष ध्वनि-ध्वन्यात्मकता के साथ चमत्कार पैदा करते हैं-

"अल्लर जॉता के लल्लर पोहा "

ढीली ढाली चक्की की मूठ भी शिथिल होती है- यौन शक्ति में दुर्बल शिथिल व्यक्ति का संतान भी निर्बल, कमजोर होता है।

कुछ उदाहरण देखिये -

1. आन के खॉड़ा, आन के फरी ।
   खेदू नाचय बोइर तरी ।।
2. सूम के धन बमूर के खूँटा ।
   बाप मरे ले लूटिक लूटा ।।
3. दाई बेटी संगे संग मंदिर अमाईन ।
   दुन्नो अपन अपन सोहाग मांगिन ।।
4. एक बर खटा महेरी,एक वर निर्मल खीर ।
   एक बर पटोर पोतिया, एक वर चट्ठा चीर ।।
5. आमा बोवय, अमली बोवय, वोवय पेड़ बयूर ।
   आन के लइका का सेवय, न कंतर न मूर ।।
6. लइका लइका के चरवाही कसही होगे गाय ।
7. काल के जोगी अउ कलिंदर के माला ।
   खाही कलिंदर ल, त जपही काला?
8. अम्मट ले निकरय त, चुरूक म परय ।
   जॉता ले उठय त कोदहला म बइठय ।।
9. कलोर छॉड़ के बंगरी ल बांधय ।
   भुइयां के पथरा मूड़ म कचारय।।
10. अड़हा मारय टेनपा त मूड़ कान फूट जाय ।
    सियान मारय बात त अंतस में धॅस जाय ।।
11. ओढ़े बर ओढ़ना नहीं, दसाय बर दसना ।
    बिहाव बर रद्दा देखय, रतनपुर के कइना ।।
12. बिन आदर के पहुना, बिन आदर घर जाय ।
    गोड़ धोय परछी म बैठय, पस बरोबर खाय ।।

छत्तीसगढ़ी भाषा में मुहावरों के प्रयोग से सहज की चमत्कार आ जाता है। एक उदाहरण देखिये-

बंसी के ददा खटिया म पचत रहित, सोआ रात म वोकर खटिया उसलगे, त गॉव के मनखे काठी-माटी म आगी देईन,पॅचलकरिया डारिन फेर बंसी मूड़ मुड़ाइस, सगा मन दोखहा बरा, संग गोलहत्थी खाईन, पागा बांध के अतमइती के सगा मन भाग पराईन, मरनी म लोटा-थारी बेचागे फेर दुकाल ह कन्हिया टोर दिदिस, ऑफारे ले करेज्जा दिखत हे।"

जब बंसी का बीमार पिता चल बसा, तो मरघट में दाह संस्कार हुआ, पॉच लकड़ियां डाली गई बंसी के सिर का मुंडन हुआ, परिवार के लोग मृतक भोज में एक-एक बड़ा खाकर तो सगा लोग पगड़ी बांधकर भाग खड़े हुए, मृत्यु संस्कार के खर्च में भांड़े बर्तन बिक गये, फिर अकाल ने कमर तोड़ दी, मुंह खोलने पर कलेजा दिखता है।"

इसमें एक दरजन मुहावरें हैं-

1.	खटिया म पचना	-	असाध्य रोगी होना
2.	खटिया उसलना	-	मर जाना
3.	आगी देना	-	दाह-संस्कार करना
4.	पंचलकरिया देना	-	दाह-कर्म में सहयोग देना
5.	मूड़ मुड़ाना	-	मुंडन से शुद्ध होना
6.	दोखहा बरा खाना	-	मृतक भोज में एक बड़ा खाना
7.	गोंलहत्थी खाना	-	मृतक भोज (दस दिनों तक) में खाना
8.	पागा-बांधना	-	पगड़ी रस्म में जिम्मेदारी सौंपना
9.	भाग पराना	-	भाग जाना
10.	लोटा थारी बेचाना	-	गरीबी में भांडे बर्तन बिक जाना
11.	कन्हिया टोर देना	-	कमर तोड़ देना
12.	करेज्जा दिखना	-	पूरी तरह पीड़ित होना।

छत्तीसगढ़ी मुहावरों में सामाजिक रीति, नीति प्रथा परंपरा, दर्शन आदि का विवेचन है जैसे-दिया बारना, कसर होना, झोरी धराना, पाल तानना, जुच्छा हाथ होना आदि। सच है कि छत्तीसगढ़ी भाषा में लोकोक्ति और मुहावरे लोक-संस्कृति को अभिव्यंजित करते हैं तथा छत्तीसगढ़ी भाषा पर्याप्त समृद्ध है।

अंत में सद्यः विवाहित बेटी की विदा का दृश्य प्रस्तुत है- 'धरती ले लेके अगास तक, तरई ले लेके चंदा तक, सुरूज ले लेके सेंदुरी किरन तक, कगरा ले लेके कँवल तक, अमरइया ले लेके कोइली के कुहकी तक, रेखा के सिसकारी ले सीटी तक, मंजूर के नाचा ले लेके वोकर टेही तक, पॉत ले बिछुरे कुररी के कंदरना तक, डोंहड़ी ले लेके फूल के पराग तक-एक अनचिन्हाउ विचित्तर कसमसी छटपटी, एक बिटौना ब्याप गे हे.."

डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा
35-ए, विद्यानगर,
बिलासपुर (छ.ग.)
फोन- 07752-223024

छत्तीसगढ़ी भाषा की लोकाभिव्यंजकता

-डॉ. बिहारी लाल साहू

छत्तीसगढ़ भारतीय गणराज्य का छब्बीसवॉ प्रशासनिक प्रदेश है किन्तु, प्राथमिक रूप से इसकी पहचान एक सांस्कृतिक जनपद के रूप में रही है। इस सुदृढ़ सांस्कृतिक जनपद की अस्मिता के उपादान हैं - प्राकृतिक वैभव से परिपूर्ण भौगोलिकता, वैविध्यपूर्ण सामाजिक संरचना, गहन सामासिक संस्कृति और गौरवपूर्ण ऐतिहासिक इतिवृत्त। प्राकृतिक उपादानों से जहॉ छत्तीसगढ़ की सुरम्य धरती का श्रृंगार हुआ है वहॉ सुललित छत्तीसगढ़ी भाषा और उसके साहित्य (वाचिक एवं लिखित) ने इस राज्य की आत्मा को गढ़ा है। आज छत्तीसगढ़ की भौतिक स्वरूप अस्मिता का एक प्रशासनिक प्रदेश के रूप में जो पुनरावर्तन हुआ है, यह छत्तीसगढ़-जन की प्रदीर्घ काल से पालित आकांक्षा और अभियान का सुपरिणाम है।

छत्तीसगढ़ इन्द्रधनुषी संस्कृति का जनपद है । भाषा और संस्कृति के क्षेत्रा में समन्वयधर्मिता इस अंचल की विशेषता है। यहॉ आर्य और आर्येतर जनजातियों की संस्कृति का सुंदर समागम हुआ है। इस क्षेत्र में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी धर्मावलम्बियों के मध्य सहज सौहार्द्र और सद्भावना स्थापित हैं। वस्तुतः छत्तीसगढ़ स्नेह, स्वीकार और सत्कार की धरती है। यहां साम्प्रदायिकता की कटुता नहीं प्रत्युत् गहन सामासिक संस्कृति की प्रतिष्ठा है।

छत्तीसगढ़ शैल मालाओं और सघन वनों से अच्छादित है। इसके दुर्गम आरण्यक क्षेत्रों और सुदूर ग्राम्यांचलों में यहां बहुसंख्यक जनता निवास करती है। इसके आरण्यक क्षेत्रों में निवास करने वाली आदिम जनजातियों की अपनी पृथक-पृथक बोली-भाषा है और उनकी संस्कृति भी। छत्तीसगढ़ एक ओर हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र से सांस्कृतिक प्रभावों को ग्रहण करता है तो दूसरी ओर दक्षिण से द्राविड़ प्रभावों को। छत्तीसगढ़ पूर्व में उड़िया भाषा और संस्कृति से संपर्कित होता है तो पश्चिम में मराठी से सांस्कृतिक सरोकार कायम करता है। हम कहना चाहते हैं कि छत्तीसगढ़ की संस्कृति की निर्मिति में उसके भाषिक परिपार्श्व और अन्यान्य संस्कृतियों का गहन योगदान रहा है । छत्तीसगढ़ में सांस्कृतिक विविधता और बहुलता के साथ एक आंतरिक एकता भी है। यही आंतरिक एकता छत्तीसगढ़ की प्रकृति और पहचान है। यहॉ सांस्कृतिक और भाषिक क्षेत्रों में वैविध्य और बहुलता लोकहितैषिता के प्रतिरोधक नहीं प्रत्युत प्रस्थापक हैं।

छत्तीसगढ़ी, छत्तीसगढ़ की जनभाषा है। यह हिन्दी भाषा समुच्चय की सशक्त सदस्या है। इसकी उत्पत्ति अर्धमागधी अपभ्रंश से मानी गयी है तथा यह पूर्वी हिन्दी की पुरोगामी भाषा है । इसकी संरचना में एक ओर शौरसेनी अपभ्रंश के भाषिक तत्वों का समावेश है तो दूसरी ओर इसमें मागधी वर्ग की हिन्दी और अहिन्दी भाषारूपों का समाहार है। यद्यपि छत्तीसगढ़ी छत्तीसगढ़ अंचल की जनभाषा है तथापि यहॉ विविध भाषा गोष्ठियों का संगम समाहार देखा जा सकता है। यहॉ आर्य भाषा परिवार की छत्तीसगढ़ी के साथ आग्नेय अथवा निषाद वर्ग की कुर्कू, खरिया, खेरवारी, गदबा, शबर आदि बोलियॉ तथा द्राविड़ वर्ग की कुरूख, गोंड़ी, दोरली और परजी आदि भाषा रूप पारिवारिक एवं जातीय परिसर में प्रचलित हैं। इधर मंगोल अथवा किरात भाषा परिवार की बोली तिब्बती शरणार्थियों के साथ सरगुजांचल के मेनपाट में आ पहुँची है। वस्तुतः छत्तीसगढ़ का भाषिक परिदृश्य वैविध्यपूर्ण है किंतु छत्तीसगढ़ी उसकी 'लिंग्वा फ्रेंका' है, जन प्रचलन की सर्वाधिक समर्थ भाषा है।

छत्तीसगढ़ी छत्तीसगढ़ के मानस को अभिव्यंजित करती है। इसे छत्तीसगढ़ी मानस का दर्पण भी कहा जा सकता है। यह छत्तीसगढ़ के लोकजीवन को उजागर करती है। छत्तीसगढ़ी भाषा की लोकाभिव्यंजक प्रकृति को देखते हुए उसे लोकभाषा की अभिधा से भूषित किया जाता रहा है। वस्तुतः लोकभाषाएँ ही लोकजीवन को अभिव्यंजित करने में समर्थ होती हैं। लोक जीवन की अभिव्यंजना शिष्ट या शास्त्रीय भाषाओं में संभव नहीं है। यद्यपि हिन्दी राष्ट्रभाषा है या राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है तथापि वह छत्तीसगढ़ी का स्थान नहीं ले सकती, उसका स्थानापन्न नहीं बन सकती। हिन्दी सत्रह भाषारूपों के समुच्चय का नाम है। हिन्दी में समाहित सभी भाषारूप लोकभाषाओं के हैं। हिन्दी में समाहित लोकभाषाओं ने हिन्दी भाषा को न केवल विनिर्मित किया है अपितु उसे प्रभावी और प्राणवंत भी किया है। यदि भारतवर्ष में लोकभाषाओं का अस्तित्व न रहा होता, तो संभवतः हिन्दी का स्वरूप कुछ भिन्न होता या वह हमारी केन्द्रीय भाषा या राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोने वाली भाषा की अभिधा से मुक्त होती।

छत्तीसगढ़ी लोकभाषा है और लोकाभिव्यंजता उसकी मूल प्रकृति है। छत्तीसगढ़ी भाषा का लोक जीवन के पालने में लालन-पालन हुआ है, उसका वाचिक परम्परा में उन्मेष हुआ है। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ी भाषा का वाचिक या मौखिक साहित्य जितना समृद्ध और अभिव्यंजक है उतना उसका अभिजात्य या शिष्ट साहित्य नहीं। छत्तीसगढ़ी भाषाभिव्यक्ति की दो धाराओं में प्रवाहित हुई है- पहली धारा वाचिक परंपरा की रही है, कथित भाषा या 'स्पोकन लेंग्वेज' के रूप में छत्तीसगढ़ी की यह लोकधारा लोकमानस में अंतर्निहित भावों और विचारों को अभिव्यंजित करती है। लोकाभिव्यक्ति की इस धारा में लोकाभिव्यंजक, शब्दावली, व्यंजनाशैली और लोकजीवन के जाने-चीन्हे बिंब और प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। छत्तीसगढ़ में प्रचलित लोकोक्ति, मुहावरे और पहेलियाँ इस धारा की प्रयुक्त भाषा को अधिक प्रांजल बना देती है। छत्तीसगढ़ी भाषा की अभिव्यंजकता वाचिक साहित्य के तथ्य और शिल्प दोनों पर दिखलायी देती है। कथ्य में लोकजीवन की अभिव्यंजकता है। शिल्प में लोकाभिव्यक्तियों के प्रचलित छंदों का वस्तुतः लोकाभिव्यक्तियाँ किसी तरह की शास्त्रीयता में बंधी नहीं होती। वे वन्य कुसुमों की तरह स्वाभाविकता में विकसित होती है और सुषमा और सुरभि से वनप्रांतर को प्रीतिकर बना जाती है।

छत्तीसगढ़ी लोकाभिव्यक्तियों की व्यंजकता को समझने के लिए कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं- ददरिया की एक पंक्ति देखिये -

केंवची खीस बगुला बगार।
तोला राखे रइहंव टूरी जीव के अधार।।

इस ददरिया में श्रृंगार का विलक्षण रूप दिखता है। लोकमानस ने युवती को कच्ची ककड़ी के समान सुकोमल, बगुले के समान उज्जवल और जवान भैंस की तरह मस्त बताया है और उसे अपने प्राणों का आधार बताया है। इसमें प्रयुक्त उपमान ग्राम्य जीवन से गृहीत है और अपने कथ्य को व्यंजित करने में समर्थ भी।

छत्तीसगढ़ी लोकभाषा के वाचिक साहित्य में नारी स्वर की प्रमुखता है। इसके सभी संस्कार गीत, भोजली गीत, सुवा गीत, करमा तथा जवांरा के गीतों में मातृसत्ता का शक्ति के रूप में अभिपूजन किया गया है। वस्तुतः नारियाँ सांस्कृतिक परंपराओं की अनुरक्षिकाएँ होती हैं और उसे गति देने, प्रयास और उच्चार देने का कार्य करती हैं। सृजन और संपोषण का दायित्व भी आखिरकार उनके हिस्से में ही तो है।

वस्तुतः भाषाएँ मानव जाति की विराट भावाभिव्यंजना से जुड़ी होती हैं। एतदर्थ, जीवन के सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक सभी पक्षों का निवेश उसकी भाषाभिव्यक्तियों में हो जाता है। भाषा के शास्त्रीय

अभिव्यक्तियों में अभिजात्य जनों का प्रकाशन होता है, प्राकृत जनों का नहीं। यह बहुत बड़ा सच है कि छत्तीसगढ़ी छत्तीसगढ़ के लोकजीवन की भाषा रही, उसे कभी राजप्रासाद का संरक्षण नही मिला। छत्तीसगढी का पक्ष हमेशा ग्राम्यजन का रहा। वह लोकमुख से मुखरित होती रही और आत्मीयजनों के मध्य मधुरिमा का संचार करती रही।

छत्तीसगढ़ी को राज्याश्रय प्राप्त नहीं होने के कारण उसे किसी लिपि में संमूर्त्तित होने का सुख नहीं मिल सका। वह अपने अतीत से राजमार्ग के पार्श्व की पगडंडी पर चलती रही है। आज हमारी भाषा की स्थिति में उत्साहप्रद परिवर्तन आ रहे हैं। अब हमारी लोकभाषा छत्तीसगढ़ी इतनी प्रोन्नत हुई है कि उसे राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किये जाने की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा है ।

कुछ और अभिव्यंजक लोकाभिव्यक्ति देखें-

देवार जाति की लोकगायिकाओं द्वारा गाये जाने वाले 'वीरम गीत' की कुछ पंक्तियों के मर्म को समझें -

मइके के खोल बड़ सोहन मोर ददा, रेंग लेहों बइहॉ झकोर ।
ससुर के खोल बड़ साकुर मोर ददा, रेंग लेहों बइहॉ सँकेल ।।

यादवों के द्वारा मड़ई पर्व में प्रयुक्त एक दोहा देखिए-

पॉव जन पनही मिले, घोड़ा जान असवार रे ।
सजन जान समधी मिले, करम जान ससुरार रे ।।

छत्तीसगढ़ी के लोक सुभाषितों की व्यंजना तो और भी महत्तर है । कुछ कहावतें देखें-

1. कुल बिहाय, कन्हार जोंते ।
2. खातू डारे त खेती नई परे त रेती ।
3. सावने भाजी, भादो दही,
   कुवॉर करेला, कातिक मही।
   खाही ते ह मरही, नहीं तो परही सही ।।

इन कहावतों में लोकमानस के चिरसंचित अनुभव हैं। ये लोकजीवन के पथप्रदर्शक हैं। जब-जब लोकमानस किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाता है- कहावतों की शरण में जाता है। इन सुभाषितों से उसका पथ अवलोकित होता है।

छत्तीसगढ़ी पहेलियॉं भी छत्तीसगढ़ के जनजीवन को अपनी अभिव्यक्ति से अभिव्यंजित करती है लोकमानस की परीक्षा के पैने उपकरण से। इससे लोकबुद्धि की थाह मिलती है। लोकमानस की कल्पनाशीलता और उसकी रचनाशील प्रवृत्तियों का परिज्ञान होता है। कुछ पहेलियॉं सुलझाएँ -

1. अहर जागिस पहर जागिस, जागिस बन के राजा।
   पहार उपर तीतुर बोले, दमकत निकरिस राजा।।

2. घम्मर घम्मर जॉता बाजे, मेड़ूरी भर भरे पिसान।
   हमर भवजी ला लइका होवथे, दउड़ो गा सब किसान।।

3. बन ले लानेंव बेंदरी, घर मं छेदेंव कान,
   दूध भात के जेवन देके फेंक दियेंव मैदान।

4. मंय कंज कुवाँरी, बहुत सहेंव मार गारी
मंय हो गेंव अब सुंदरमती, नइ सहँव एको रत्ती।

5. बोंवत देखेंव बटुरा, जामत में कुसियार।
ढाई महिना के छोकरा, दाढ़ी मेंछा म हुसियार ।

6. उड़े तो खनखन करे, बइठें पंख बिछाय।
लखिन जीव ला मारके, आपन कछु न खाय।।

कुछ मुहावरों से भी छत्तीसगढ़ी की भाषा-व्यंजकता का अनुभव किया जा सकता है । उदाहरण छाती फाटना, खटिया उसलना, बान मारना, बाहिर बैठना, तीन-पॉच करना।

अंत में, हमारा यह मानना है कि छत्तीसगढ़ी का लोकभाषा रूप उसका वाचिक रूप अधिक आभिव्यंजक है । उसका लालित्य, उसकी लय तथा उसका माधुर्य अलौकिक है। छत्तीसगढ़ी भाषा की परंपरित वाचिक अभिव्यक्तियाँ कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से छत्तीसगढ़ की प्रकृति के समान अनिंद्य हैं। हमें छत्तीसगढ़ी भाषा के लोकतत्वों को उसके शिष्ट साहित्य में निवेशित करना होगा तभी छत्तीसगढ़ी भाषा सुघड़, सुन्दर और सार्थक होगी, छत्तीसगढ़ की अस्मिता उसकी पहचान बनने की अधिकारिणी होगी। इत्यलम्.

डॉ. बिहारीलाल साहू
17, किरोड़ीमल कॉलोनी,
रायगढ़ (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ी भाषा की व्यंजकता

- डॉ. विनय कुमार पाठक

शब्दों में अंतर्निहित अर्थ को अनावृत्त करने का व्यापार शब्द-शक्ति है जो मुख्य अर्थात् संकेतित अर्थ के बोधक होने के कारण अमिधा, उसके स्पष्ट न होने से अर्थात् रूढ़ि या प्रयोजन के अन्य लक्षित अर्थ के कारण लक्षणा एवं इन दोनों से विरत् होने पर जब व्यंग्यार्थ का बोध हो तब व्यंजना का अवतरण होता है। इसे ही ध्वन्यार्थ, सूच्यार्थ, आक्षेपार्थ, प्रतीयमानार्थ भी कहा जाता है। अमिधा और लक्षणा प्रायः शब्द से संबंद्ध होते हैं, जबकि व्यंजना शब्द और अर्थ दोनों से समन्वित होते हैं। छत्तीसगढ़ी भाषा के शब्द व्यंजकता के कारण अत्यंत उपादेय है। इससे भाषा-सामर्थ्य को उदभास तो होता ही है, उसके वैशिष्ट्य का आभास और अभिव्यक्ति कौशल का भास भी हो जाता है। कुछ सार्थक छत्तीसगढ़ी शब्दों की व्यंजकता प्रस्तुत है।

'सुकुड़दुम' शब्द किंकर्त्तव्यमूढ़ता की स्थिति का वाचक है। यह 'सुकुड़' और 'दुम' दो पदों के मेल से विनिर्मित छत्तीसगढ़ी शब्द विशेष हैं जो मूल रूप से कुत्ते के दुम सिकोड़कर आत्म-समर्पण की मुद्रा में यह किंकर्त्तव्य विमूढ़ता के अर्थ में व्यंजित है। अरबी-फारसी के शब्दों को छत्तीसगढ़ी संस्कृति से संपृक्त कर भाभिव्यक्ति करने का यह अनूठा प्रयोग सराहनीय है।

हिन्दी में पचलित 'खुरापाती' शब्द छत्तीसगढ़ी में भी उसी अर्थ में अभिव्यंजित हैं लेकिन यह छत्तीसगढ़ी के दो पदों 'खुरा' और 'पाटी' से समीकृत है। खाट के खुरा और पाटी को ठीक से लगाना या जमाना सरल कार्य नहीं है। इसके संपादन में जो दक्ष होता है, अर्थात् जोड़-तोड़ में निपुण होता है, वहीं 'खुरापाती' कहलाता हैं। छत्तीसगढ़ी के ये दो मूल पद पूरे हिंदी प्रदेश में नयी अर्थ-छवि के साथ व्यवहृत है।

छत्तीसगढ़ी का 'जउँहर' या 'जौंहर' शब्द मूलतः 'जौहर' से निष्पादन होकर नयी व्यंजना को प्रस्तुत करता है। ऐसी समस्त क्षति जिसकी संपूर्ति निकट भविष्य में संभव न हो, 'जउँहर' से जानी जाती है।

'चिटपोट' शब्द मूलतः 'चित-पट' के द्वंद्व से उपजी विशणता का वाचक है। ऐसी स्थिति जिससे अंतर्द्वंद्व से परे होकर मनुज मौनर साध ले, 'चिटपोट' से अभिव्यंजित होता है।

'मीनमेखिया' ज्योतिष के मीन-मेष-राशि से समीकृत है। मीन-मेष की ज्योर्तिशोधन की वृत्ति जिस व्यक्ति में पायी जाती है, वह अवश्य ही सामान्य कार्यो के संपादन में भी बहुत सोचता-विचारता है। छत्तीसगढ़ी में ऐसी ही प्रवृत्ति के व्यक्ति को 'मीनमेखिया' से संबोधित किया जाता है। इसी तरह छत्तीसगढ़ी में प्रयुक्त 'मुरहा' शब्द मूलतः मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाले बालक के लिए अभिहित है लेकिन यह दुख देने वाले उपद्रवी बालक के लिए अभिव्यंजित होता है।

'पलपलाना' शब्द हिंदी के तीन पदों "पल' पल,'आना' से मिलकर छत्तीसगढ़ी में व्यंजना के साथ प्रस्तुत होता है। वह आम 'पलपलहा' होता है जिसका गूदा पूरी तरह रस बन जाता है। यदि उसमें एक सुई चुभा दी जाए तो पल-पल करके पूरा रस बाहर आ जाता है।

'राई-छाई' भी हिंदी के दो 'राई' अर्थात् 'सरसों का दाना' और 'छाई' अर्थात छा जाना या बिखर जाना' से समीकृत है। जैसे अल्प परिमाण सरसों बिखरकर छा जाता है, उसी भाँति किसी वस्तु की टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जाना नयी व्यंजना के साथ व्यवहृत होता है।

'असत्ती' शब्द सती के विपरीत या सत्य के प्रतिकूल आचरण करने से समीकृत है लेकिन यह छत्तीसगढ़ी में मर्यादा, सीमा, नियम के अतिक्रमण के लिए व्यंजित है। 'असत्ती जाना' मुहावरा भी इस अर्थ में समाहित है।

'असकट' शब्द 'संकट' से समीकृत है। संकट चतुर्थी के उपवास का धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महत्व है। इस क्रम में नारियाँ निर्जला उपवास रहती हैं। यह संकट या 'संकट-व्रत है अर्थात परीक्ष की घड़ी है। इसमें निहित ऊब-उदासी के लिए छत्तीसगढ़ी में 'असकट' शब्द व्यवहृत है। असकट से असकिटियाना शब्द विकसित है। इसी तरह 'उटकट या उटकटासी शब्द भी ऊब-उदासी का ही वाचक है। हिंदी के 'उत्कट' से समीकृत इस शब्द का मूल अर्थ 'तीव्र' है। तीव्र या प्रबल भाव ऊब की ही सृष्टि करता है।

'कुसली' शब्द हिंदी के विशेषण शब्द 'कुशल' से समीकृत है। छत्तीसगढ़ी में यह 'गुझिया' के अर्थ में अभिव्यंजित है। 'कुसली' शब्द निर्दिष्ट करता है कि कुशलता से बनाये जाने वाले-व्यंजना को 'कुसली' से अभिहित किया गया। छत्तीसगढ़ी के अन्य पकवान सहजता के साथ निर्मित हो जाते हैं, जिसमें छत्तीसगढ़ी को विशेष कौशल की आवश्यकता नहीं होती किन्तु 'कुसली' की निर्मित उसके लिए कुशलता का माप होती है।

छत्तीसगढ़ी का 'गरू' शब्द हिन्दी के 'गुरू' से समीकृत है। गुरू का ज्ञान भारी होता है, इसलिए शिष्य उसकी महत्ता स्वीकार करता है। इस अर्थ में जो गुरू अर्थात् 'भारी या वजनी' होता है, वही गुरू होता है जैसे पुरूष होने के कारण वह पुरूष है, वैसे ही गरू होने के कारण वह गुरू है। छत्तीसगढ़ी की इस नयी व्यंजना ने गुरू के मूल अर्थ को निर्दिष्ट किया है जो अत्यंत उल्लेखनीय है।

छत्तीसगढ़ी में प्रयुक्त 'गोसैंया' शब्द 'गोसाईं' का अर्थ गोस्वामी है जो ईश्वर का भी वाचक है और जाति विशेष के उपनाम-बतौर भी प्रतिष्ठित है। छत्तीसगढ़ी में यह 'पति' के अर्थ में व्यंजित है। छत्तीसगढ़ी नारियों के लिए पति परमेश्वर है अतः वह उसे 'गोसइयां' कहती हैं। पत्नी के सर्मपण व सहभागिता को देखकर पति भी उसे 'गोसाईन' कहता है। इस तरह दोनों का एक-दूसरे के प्रति सम्मान भाव भाषा की व्यंजकता का द्योतक है।

हिंदी के विशेषण शब्द 'डेढ़ और 'सास' शब्द के समन्वय से निर्मित छत्तीसगढ़ी शब्द 'डेढ़सास' नई व्यंजना को प्रस्तुत करता है। इसका अर्थ 'पत्नी या पति की बड़ी बहन' होता है जिसका महत्व सास से अधिक अर्थात डेढ़ गुना होता है। सास पुरानी पीढ़ी की होती है और डेढ़सास नयी पीढ़ी की अतः युगानुरूप समस्या व वातावरण को अच्छी तरह से समझती है। इसी तरह 'डेढ़सारा' का संयोजन भी छत्तीसगढ़ी समाज की विशिष्टता है जो पत्नी के अग्रज के लिए संबोधित किया जाता है। 'साला' या 'सारा' हँसी-मजाक का रिश्ता है जबकि 'डेढ़सारा' पूज्य होता है। उससे मजाक करना मर्यादा का अतिक्रमण करना है। छत्तीसगढ़ी का 'डढ़हा' शब्द विशिष्ट अर्थ में अभिव्यंजित है जबकि यह हिंदी के विशेषण 'डेढ़ा' अर्थात 'डेढ़ गुना' का वाचक है। छत्तीसगढ़ी में यह 'विवाह में वर के साथ रहने वाला जीजा' है जिसका विवाह के नेग में अधिक महत्व है। इसके महत्व को दूसरों से डेढ़गुना अधिक निर्दिष्ट करने की वजह से, संभवतः सम्मान देने के लिए इस शब्द की व्यंजना की गयी प्रतीत होती है।

हिंदी के विशेषण शब्द 'धनी' का अर्थ 'धनवान' या प्रतिष्ठित व्यक्ति है जबकि छत्तीसगढ़ी में यह 'पति' के लिए व्यंजित है। छत्तीसगढ़ी नारियों के लिए प्रतिष्ठित और कमाऊ अर्थात् धर्नाजन करने वाला और उसके सतीत्व का धन भी पति ही होता है। वही उसके लिए सम्मानित व पूज्य है।

हिंदी की सकर्मक क्रिया शब्द 'पूजना' का अर्थ पूजन-अर्चन है जबकि छत्तीसगढ़ी में यह 'बलि' के अर्थ की व्यंजना करता है। शक्त मन के प्रभाव के कारण इस प्रथा का प्रचलन है। बलि में पहले बकरे को 'पूजा' जाता है अर्थात् पूजा की जाती है तथा फिर 'पूजा' जाता है अर्थात 'काट' दिया जाता है। मनुज शनैः बलि-प्रथा की असात्विक-हिंसक भावना को छोड़ रहा है। पूजादि विधि में नींबू या रखिया आदि को चाकू-छूरी से काटना रूढ़ अर्थ में बलि-भावना को मान्यता देकर सात्विक भावना से आक्रांत होने का संकेत कराता है।

छत्तीसगढ़ी में दिशावाची शब्दों की व्यंजना आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पीठिका को उद्घाटित करती है। उत्तर दिशा के लिए गंगा नदी की अवस्थिति के कारण 'गंगाहू' या राम संस्कृति की संपन्नता के दिग्दर्शन हेतु 'भण्डार' शब्द प्रचलित है जबकि राक्षसराज रावण की अवस्थिति के कारण दक्षिण दिशा 'रिक्सहू' या 'रक्सैल' से व्यंजित होता है। सूर्योदय और सूर्यास्त को ध्यान में रखकर पूर्व और पश्चिम को क्रमशः 'उत्ती' और 'बुड़ती' से संबोधित किया जाता है।

छत्तीसगढ़ी मे अनेकानेक शब्द हैं जो व्यंजकता के कारण भाषा को गरिमा, सजीवता और जीवंतता प्रदान करते हैं। ये हिंदी और अन्य भाषा-बोलियों के शब्दों का यथावत् ग्रहण नहीं करते, वरन् चूड़ी पहनकर, भात खिलाकर अपनी जाति में मिलाते हैं।

डॉ, विनय कुमार पाठक
शा0स्ना0कन्या महाविद्यालय बिलासपुर

छत्तीसगढ़ के पारंपरिक खेल

- चन्द्रशेखर चकोर

छत्तीसगढ़ लोक खेलों का प्रदेश है। यहां की संस्कृति में सैकड़ों लोक खेलों का प्रचलन मिलता है। कृषि कार्य पर निर्भर यहां के निवासियों के लिए मनोरंजन का मुख्य साधन ही खेल है, जो उन्हें सहज में ही उपलब्ध हो जाता है ।

छत्तीसगढ़ में प्रचलित पारंपरिक खेलों के उद्‌भव से संबंधित किसी भी तरह के प्रमाण उपलब्ध नहीं है, परन्तु शिव पुराण में भगवान शिव और पार्वती के बीच चौसर खेलने का उल्लेख मिलता है।

पारंपरिक खेलों के दृष्टिकोण से महाभारत काल समृद्ध था। महाभारत काल में अनेक लोक खेलों का वर्णन मिलता है। जैसे- भगवान श्री कृष्ण द्वारा जमुना तट पर गेंद खेलने का वर्णन । गेंद के लिए छत्तीसगढ़ में 'पूक' शब्द का प्रचलन है। पूक से ही छत्तीसगढ़ की संस्कृति में गिदिगादर और पिट्‌टूल नामक खेल की परम्परा विकसित हुए हैं।

महाभारत काल में चौसर, डंडा पचरंगा तथा बांटी खेलने का वर्णन भी मिलता है। बांटी ऐसा लोक खेल है, जिसके चार पांच स्वरूप छत्तीसगढ़ में विकसित हुए है। यहां पर उल्लेख करना उचित होगा कि महाभारत कला में अनेक लोक खेलों का प्रचलन रहा है, जो महत्वपूर्ण घटनाओं से संबंधित नहीं होने के कारण अनुउल्लेखित रह गए। महाभारत काल को ही सर्वाधिक लोक खेलों का उद्‌भव काल मान सकते हैं।

छत्तीसगढ़ के निवासी अल्पायु से ही कृषि कार्य में लग जाते थे, इसलिए उन्हें खेलने का पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं होता था। परिणामस्वरूप बड़े व बुजुर्गों के लए बहुत कम खेलों की परम्परा विकसित हुए। सर्वाधिक लोक खेल बच्चों के लए विकसित है और उन्हीं वर्ग के बीच सरलता से गुड़ी (चौपाल) में खेला जाता है। ऐसे लोक खेलों मे लड़के व लड़कियां साथ-साथ होते हैं। जैसे अंधियारी-अंजोरी, नदी-पहार, गिदिगादा, छू-छुवउल, रेसटीप, पोसम-पा, सोना-चांदी। लड़के व लड़कियों का साथ-साथ खेले जाने वाला अधिकांश खेलों का स्वरूप सामूहिक है।

नारी वर्ग सदियों से ही बंधन में रहा है, उन्हें इतनी स्वतंत्रता कभी नहीं दी गई कि वे इच्छानुसार खेलकर विभिन्न खेलों का आनंद उठा सके। भले ही नारी सामाज बंधन में रहा हो, किन्तु नारी खेलों की परम्परा बंधन में नहीं रह पाई। छत्तीसगढ़ की लोक जीवन में अनेकानेक नारी खेलों की परम्परा विकसित हुई है। प्रमुखत बिल्लास, फुगड़ी, चुड़ी बिंनउल और गोटा।

पुरूष वर्ग सदैव ही स्वतंत्र रहा है। खेलने-कूदने का अवसर उन्हें अधिक प्राप्त हुए हैं। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ में विकसित सर्वाधिक लोक खेलों की परम्परा पुरूष प्रधान है जैसे - बांटी भौंरा, गिल्ली-डंडा, अल्लगकूद, पिट्‌टूल, चूहउल, अट्‌ठारह गोटिया आदि।

छत्तीसगढ़ में पारम्परिक खेलों के विकास से संबंधित वर्णन तब तक अपूर्ण है, जब तक ऐसे खेलों का उल्लेख न हुआ हो जिनमें गीत का प्रचलन हो। जिन्हें हम खेलगीत कहते हैं। फुगड़ी, भौंरा, खुड़ुवा, अटकन-मटकन व पोसम-पा ऐसे लोक खेल है जो गीत के कारण लोक साहित्य में अपना विशेष स्थान बना लिए हैं।

खुड़ुवा का गीत -

खुमरी के आल-पाल खाले बेटा बिरो पान
मंय चलावंव गोटी, तोर दाई पोवय रोटी
मयं मारंव मुटका, तोर ददा करे कुटका

आमा लगे अमली, बगईया लागे झोर
उतरत बेंदरा, खोंधरा ल टोर
राहेर के तीन पान, देखे जाही दिनमान

फुगड़ी का गीत -

गोबर दे बछरू गोबर दे, चारों खूंट ल लीपन दे ।
चारो देरानी ल बइठन दे, अपन खाथे गूदा-गूदा।।
ये बीजा ल का करबो, रहि जबो तीजा।
तीजा के बिहान दिन, घरी-घरी लुगरा।।
चींव-चींव करे मंजूर के पिला, हेर दे भउजी कपाट के खीला।
एक गोड़ म लाल भाजी, एक गोड़ म कपूर।।
कतेक ल मानंव मंय, देवर ससूर।
फुगड़ी फूं रे फुगड़ी फूं ...

पोसम-पा का गीत -

पोसम-पा भई पोसम पा, बड़ निक लागे पोसम-पा
सवा रूपय के घड़ी चोराय, आना पड़ेगा जेल में

अटकन-मटकन का गीत -

अटकन-मटकन दही चटाकन
लउहा-लाटा बन के कांटा
चिहुरी-चिहुरी पानी गिरे, सावन म करेला फूले
चल-चल बिटिया गंगा जाबो, गंगा ले गोदावरी।
पाका-पाका वेल खाबो, वेल के डारा टूटगे
भरे कटोरा फूटगे।

विशेष पर्व में 'गेड़ी' तथा 'मटकी फोर' का प्रचलन मिलते हैं, उसी तरह वर्षा ऋतु में 'फोदा' का, गीत ऋतु में उलानवांटी का और ग्रीष्म ऋतु में गिल्ली-डंडा की लोकप्रियता बढ़ जाती है। छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति में सर्वाधिक लोक खेलों की स्वरूप सामूहिक है, किन्तु एकल रूप में उलानबांटी, चरखी व पानालरी का तथा दलगत में पतारीमार, उल्लगकूद, पिट्टूल, गिल्ली-डंडा तथा भिर्री खेल का प्रचलन मिलता है।

राष्ट्र की स्वतंत्रता के पश्चात् अन्य क्षेत्र व अंचल के लोगों का छत्तीसगढ़ में प्रवेश तीव्रगति से हुआ। परिणाम स्वरूप विभिन्न क्षेत्र व अंचल के पारम्परिक खेल भी आ गए। खेल, मात्र मनोरंजन प्रदान करने वाला माध्यम होने के कारण यहां की संस्कृति में शीघ्रअतिशीघ्र वह समाहित होने लगा। वर्तमान समय में ऐसे अनेक लोक खेल मिलते है जो यहां का नहीं है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है। मानो छत्तीसगढ़ के ग्रामीण जीवन में ही उद्भूत है। जैसे चुन-चुन मलिया, चिकि-चिकि बाम्बे और आंधी चपाट।

चन्द्रशेखर चकोर
ग्राम - कान्दुल, पोस्ट - सुन्दरनगर
जिला - रायपुर
फोन - 0771 -2250764

छत्तीसगढ़ी के खेल एवं बाल-गीत

- प्रताप ठाकुर, बिलासपुर

आज की आधुनिक दुनिया संचार की दुनिया है, पूरी दुनिया वैश्वीकरण के चंगुल में फंस चुकी है, और इस वैश्वीकरण ने हमारे समाज को पुरी तरह न केवल प्रभावित किया है, हमारे सामाजिक-सांस्कृति सरोकारों को भी बदल दिया है। हमारी संस्कृति का जो अब तक अनछुआ हिस्सा था उसमें भी परिवर्तन का स्पष्ट संकेत दिखाई देने लगा है।

आज की दुनेयां ग्लोवल मार्केटिंग की है, अधिक मुनाफा कमाने की है। वाजार के नियंताओं ने भविष्य को पढ़ लिया है वे समझते हैं भारत जैसे अपेक्षाकृत गरीव एवं विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त देश में भी क्रिकेट सबसे लोकप्रिय खेल है। ऐसे समय में ग्रामीण खेलों की याद करना कुछ लोगों की दृष्टि में पीछे की ओर मुंह करके आगे बढ़ने जैसा है हम जिन ग्रार्मीण क्षेत्रों में इन खेलों के प्रति अनभिज्ञता एवं अरूचि तकलीफ देह है, कवड्डी, खो-खो जैसे कुछ खेलों को छोड़ दें तो बाकी खेलों के वारे में ग्रामीण पृष्ठभूमि के जानकारों की अज्ञानता आश्चर्यजनक है। इन खेलों को लगातार पृष्ठभूमि में गुम हो जाने के पीछे गांवों का शहरीकरण तथा शिक्षा प्रणाली में बदलाव भी इसका एक कारण है। सुदूर गांवों को छोड़ दें तो कस्वानुमा गांवों में वीडियो पार्लर तथा कम्प्यूटर खेलों की घुसपैठ ने भी सीधे सादे तथा बिना मंहगी सामग्रियों के खेलने वाले खेलों को दुर्लभ बना दिया है।

जब मैंने शहर से थोड़े दूर पर बसे गांवों में जाकर विषय की चर्चा की तो गांवों में रहने वाला पढ़ा लिखा युवा इनके विषय में कुछ भी नहीं जानता, 30-40 की उम्र पार कर चुके कुछ लोग कहीं-कहीं मिले जिन्होनें अपने बचपन में इन खेलों को या तो खेला था या खेलते हुए देखा-सुना था, तो सबसे पहले हम कुछ खेलों एवं गीतों की चर्चा कर लें, जेब गीतों की चर्चा की बात आई तो यहां भी लोगों को गीतों न तो मुखड़े याद थे न आगे की लाइने इतना जरूर जानते थे, कि खेलते समय कुछ गीत गाए जाते थे।

छत्तीसगढ़ के गांवों में खेले जाने वाले खेल- डुडुआ या कबड्डी, खो-खो, चौपड़ या पाशा, पर्चीसा, नौगोंटी-चालगोंटी या भटकौला, छेरी बाघ (शतरंज, चौपड़ की तरह का एक खेल), गिल्ली-डंडा, डंडा-पचरंगा-झाड़ बेंदरा, गेंड़ी, गेंड़ी दौड़ (हरेली पर्व), छुआ'छुऔव्वल-भुर्री-चर्रा-चर्रा, टीप-रेस-चोर सिपाही, राग रस-धम्मक धुम्मक-सत्तुल, बिस-अमृत-नदी पहाड़, बांटी (बदाबुदी) भौंरा चलाना, कुढ़ाल या आकुल-चाकुल या चिखौव्वल, नरियर फेंकऊला (हरेली पर्व के समय), सांट लुकऊला या घोड़ा बदाय छाई, पीछे देखो मार खाई, धंसऊला या गड़उला (बरसात के आसपास), खीला ठोंकउला, धम्मक-धुम्मक या धामर-धूसर, पतंग उड़ाना, खिस्सुल, चिमटुल, चेथुल, डंडा को लाउल (खरतोल), हाथी घोड़ा पालकी जय कन्हैया लाल की- झुल्ला झूल-कदम के फूल, चूड़ी जीत-गोबर जीत, फुगड़ी-कदम्मा, पंचवा, घरगुंदिया, जतुलिया, ठेंकुलिया-धानी मुंदी, पुतरी बिहाव (अक्ती के समय), चकर बिल्लस, रस्सी कूद आदि।

इस तरह हम देखते हैं कि खेलों में भी एक तरह का विभाजन है कुछ खेल पुरूष एवं बालक ही खेलते हैं तो कुछ खेलों पर बालिकाओं एवं महिलाओं का एकाधिकार है, परन्तु अधिकांश खेल ऐसे हैं जिन्हे बालक-बालिकाएं मिलजुलकर खेल सकते हैं, अधिकांश खेल वैसे तो नियमबद्ध हैं, परन्तु खेलों में संख्या की कोई बाध्यता नहीं है, कबड्डी एवं खो-खो में संख्या की कोई बाध्यता नहीं है, कबड्डी एवं खो-खो में संख्या निर्धारित है, ये खेल ग्रामीण अंचल से उठकर राज्य एवं राष्ट्र की सीमा पार कर चुके हैं, इन खेलों को एशियाई खेलों मे शामिल किया गया है, गांवों में कबड्डी अभी भी डुडुआ के ग्रामीण नाम से खेला जाता है, अंतर केवल यह होता है कि एक तरफ का खिलाड़ी जब दूसरी ओर जाता है वह कबड्डी-कबड्डी के स्थान पर "चल डुडुआ डू-डू-डू-डू " कहता है।

चौपड़ या पाशा- यह भी एक प्राचीन खेल है तथा महाभारत काल से लोकप्रिय है, पांच पांडव द्रौपदी को चौपड़ के खेल में ही कौरवों के हाथ हार गये थे, यह गांवों में हाल-हाल के समय तक खेल जाता था फेंकने वाले पाशे हाथीदांत के होते थे, बाद में प्लास्टिक के पाशों से भी खेला जा रहा है, इसे कम से कम चार लोग खेलते हैं।

पचीसा- पचीसा में शतरंज के खानों की तरह पच्चीस घर होते हैं तथा कम से कम दो तथा अधिक से अधिक चार लोग खेल सकते हैं चारों खिलाड़ी या तो अलग-अलग रंग की गोटियों से चार या पांच कोड़ियों से खेलते हैं, इन चीजों के उपलब्ध न होने पर अन्य चीजों को रखकर इमली के बीजों से भी खेला जा सकता है।

नौगोंटी- नौगोंटी दो लोग खेल सकते हैं, इसमें खाने से अपने गोटियों को विरोधी खिलाड़ी के घर तक पहले पहुंचाना होता है जो पहले अपनी गोटियां पहुंचाता है वह जीतता है।

मटकौला(मटकउला)- यह खेल लड़कियां अक्सर खेलती थीं इनमें दो तरफ छह-छह गड्ढे या लकड़ी के पटिये पर गड्ढे बनाए या खोद लिये जाते हैं, दोनों किनारे पर बड़े बड़े गड्ढे बनाए जाते हैं इन्हें बड़ा कोठी या ढाबा कहते हैं। सभी छह-छह खानों में गिनकर इमली के बीज डाल दिये जाते हैं फिर एक खिलाड़ी एक गड्ढे या खाने से बीज निकलकर बाएं तरफ से प्रत्येक खाने में एक-एक बीज डालता है जहां बीज खत्म होता है उसके अगले खाने से फिर बीज निकाल कर उसी तरह प्रत्येक खाने में डालते जाते हैं यदि किसी बार बीज ऐसे खाने में खत्म हो जिसके अगले खाने में बीज न हो तो खिलाड़ी का दांव खत्म हो जाता है उसके बाद दूसरा खिलाड़ी अपने खाने से निकालकर यही खेल शुरू करता है जब एक खिलाड़ी के तरफ के सब बीज दूसरी तरफ हो जाएं तो वह खिलाड़ी जीत जाता है, इस खेल में संख्या ज्ञान काफी सहायक होता है और खिलाड़ी ऐसे घर से बीज उठाकर शुरू करता है कि विरोधी खिलाड़ी कें तरफ के सब बीज उठाकर अपनी तरफ के खानों में डालता जाए।

छेरी बाघ- यह भी शतरंज की तरह का एक खेल है, इसमें एक छेरी या बकरी तथा एक बाघ या शेर होता है जब तक खिलाड़ी बाघ के द्वारा शेर को घेर नहीं लेता खेल चलता रहता है।

गिल्ली-डंडा- इसे गांव में इब्बा भी कहते हैं, इसे दो से लेकर 8-10 लोग समूह बनाकर खेल सकते हैं, यह शक्ति संतुलन और कल्पना शक्ति का खेल है एक डंडा तथा छोटी लकड़ी के दोनों छोर को नुकीला बनाकर, मारकर उछालते हैं, जितनी अधिक दूर तक जाए वहीं जीतता है तथा दूसरे पक्ष को दांव देना होता है यह कहीं-कहीं अभी भी खेला जाता है।

डंडा-पचरंगा- यह खेल किसी शाखादार वृक्ष के नीचे एक लकड़ी का डंडा रखदिया जाता है जो खिलाड़ी दांव देता है वह नीचे रहता है बाकी पांच छह खिलाड़ी पेड़ पर चढ़ जाते हैं, नीचे वाला खिलाड़ी पेड़ पर चढ़े खिलाड़ी को पेड़ पर चढ़कर छूने की कोशिश करता है वह खिलाड़ी बचकर नीचे आकर रखी गई लकड़ी को छू लेता है, तो बच जाता है यदि उसे दांव देने वाले खिलाड़ी ने पेड़ पर छू लिया तो उसे दांव देना पड़ता है, जो बच्चे या ग्रामीण पेड़ों पर कुशलता एवं सावधानी से चढ़कर यहां-वहां जा सकते हों वही खेल में सफल होते हैं।

छुआ-छुआउल(छेवोव्वल)- इस खेल में संख्या निर्धारित नहीं होती, अधिक से अधिक लोग खेल सकते हैं, एक खिलाड़ी जो दांव देता है वह दौड़कर दूसरों को छूने की कोशिश करता है, जो पकड़ में आता है, उसे ही दांव देना होता है, इसे चाहे जब तक चाहे खेला जा सकता है इस खेल में तेजी, फुर्ती एवं दौड़ कौशल की परख होती है।

भुर्री- एक गोल घेरा खींचकर खिलाड़ी उसके भीतर चले जाते हैं जो खिलाड़ी दांव देता है वह घेरे के बाहर होता है, तथा वह गोल घेरे के बाहर से अंदर के खिलाड़ियों को छूने की कोशिश करता है जिसे वह छू लेता है वह आऊट हो जाता है फिर उसे घेरे के बाहर आकर दांव देना पड़ता है।

चर्रा-चर्रा- यह खेल भी एक घेरे के अंदर धन का चिन्ह जैसी लकीर खींचकर बच्चे उसके चारों तरफ दौड़ते रहते हैं जो खिलाड़ी दांव देता है उसे लकीर के ऊपर दौड़कर ही बाकी खिलाड़ियों को छूना पड़ता है, जो छू लिया जाता है उसे अगला दांव देना पड़ता है। इन सभी खेलों में खिलाड़ी की तेजी, फुर्ती और शारीरिक क्षमता खेल की जान होती है।

टेप रेस- इस समूह खेल में भी संख्या निर्धारित नहीं होती एक खिलाड़ी दांव देता है बाकी अलग-अलग स्थानों पर छुप जाते हैं, जो दांव देता है वह छुपने वाले खिलाड़ियों को खोजकर उसका नाम लेकर कहता है पहला टीप सोहन दूसरा टीप सुरेश तीसरा टीप चौथा टीप यदि इसी बीच किसी छिपे हुए खिलाड़ी द्वारा उसे छूकर रेस कहकर छू दिया जाता है तो उसे फिर से दांव देना होता है यदि उसने एक-एक कर सभी खिलाड़ी का नाम लेकर टीप पूरा कर देता है तो जो पहला टीप होता है उसे दांव देना पड़ता है- इसी तरह चोर सिपाही भी एक दूसरे को खोजते हैं, इसमें खिलाड़ी को अंधेरे में छिपे हुए खिलाड़ी को पहचानकर ढूंढना होता है इससे उसकी बुद्धि कौशल का पता लगता है।

टामरस- धम्मक घुम्मक या धामर धूंसर- यह गेंद से खेलने वाला खेल है जिस खिलाड़ी के हाथ में गेंद होती है वह दूसरे खिलाड़ी को फेंककर गेंद से मारता है दूसरे खिलाड़ी बचने की कोशिश करते हैं, इन खेलों को दो पक्ष बनाकर भी खेला जाता है एक पक्ष का खिलाड़ी अपने ही पक्ष के अन्य खिलाड़ी को गेंद पास करता है ताकि वह नजदीक के विरोधी खिलाड़ी को गेंद से मार सके यहां पर गेंद न होने पर कपड़े की गेंद बनाकर भी खेला जाता है।

सत्तुल- इस खेल में भी दो समूह होते हैं खिलाड़ियों की संख्या बराबर-बराबर होती है,एक छोटे गोल घेरे के भीतर सात खपरैल के टुकड़े एक दूसरे पर सीधे रखे जाते हैं, सबसे पहले एक समूह गेंद से मारकर खपरों को गिराता है फिर दूसरा समूह इन खपरों को पूर्व की तरह सजाकर रखने की कोशिश करता है इस बीच दूसरे समूह के खिलाड़ी गेंद से खपरों को जमाने वाले खिलाड़ी को गेंदों से मारने की कोशिश करते हैं और वह उनसे बचकर फिर से खपरों को जमाने की कोशिश करता है, यह कोशिश तब तक चलती रहती है, जब तक खपरे के टुकड़े एक दूसरे पर जमा नहीं लिये जाते, जमा लेने पर दूसरे समूह को दांव देना होता है, इसमें गेंदों से बचने तेजी फुर्ती एवं चुस्ती की आवश्यकता होती है।

बिस-अमृत- इसमें चाहे जितने खिलाड़ी खेल सकते हैं जो खिलाड़ी दांव देता है वह दौड़ाकर जिस खिलाड़ी को छूता है उसे बिस (विष) कहकर बैठना पड़ता है अन्य खिलाड़ी उसे अमृत कहकर छूते हैं तथा वह उठ पाता है दांव देने वाले खिलाड़ी को छू-छू कर बैठाना पड़ता है यदि सारे खिलाड़ी बैठा दिये जाते हैं तो अंतिम खिलाड़ी को छूने पर उसे दांव देना पड़ता है।

नदी पहाड- यह खेल गांव में खेलते समय घर के किनारे बने हुए चबूतरों को पहाड़ तथा नीचे गली को नदी मानकर खेला जाता है जो खिलाड़ी दांव देता है वह नदी में आने वाले खिलाड़ियों को दौड़ा-दौड़ाकर छूने की कोशिश करता है तथा उन्हें पहाड़ पर ही रहने को बाध्य करता है पहाड़ का खिलाड़ी यदि नदी में छू या पकड़ में आ जाता है तब उसे दांव देना पड़ता है इसी तरह यह खेल चलता रहता है।

बांटी- कांच के कंचों से यह खेल कम से कम दो तथा अधिक खिलाड़ियों के बीच खेला जाता है, इसमें बदा-बुदी आंटी-सांटी हार जीत तथा हारने वाले खिलाड़ियों को पढ़ाने का खेल होता है, इसमें खिलाड़ियों के बीच निशाने का खेल होता है।

भौंरा- भौंरा चलाना भी अपने आप में एक कौशल है इसे चलाना सीखने के पश्चात् तरह-तरह से भौंरे का खेल होता है।

कुढ़ील या आकुल चाकुल या लिखउल (लिखौव्वल)- इसमें दो दल बनाकर बाल समूह पत्थर की दीवार या खपरैल या गली के कोनों में गिनकर लकीर खींचते जाते हैं फिर वहां पर कुल संख्या लिख देते हैं, इस तरह दोनों दल छिपाकर गूढ़ स्थानों पर लकीर खींचते हैं या कागज में लकीर खींचकर उन्हें छिपा देते हैं फिर दोनों समूह एक दूसरे के स्थानों पर पारी-पारी से जाकर लिखी या छिपाई लकीरों को खोजते हैं जो खोजने से बच जाते हैं उन संख्याओं को जोड़ते हैं जिनकी संख्या अधिक बची होती है, वह समूह जीतता है इस खेल से संख्या ज्ञान का आभास होता है।

नरियर फेंकउला- यह खेल गांवों में आज भी लोकप्रिय है यह हरेली पर्व के दिन खेला जाता है, इसमें खिलाड़ी नारियल को शक्तिभर दूर फेंकता है जो अधिक दूर तक फेंकता है वह जीतता है, इसमें नारियल एवं रुपयों, पैसों की बाजी भी लगाई जाती है।

गेंड़ी दौड़- हरेली के समय ही गेंड़ी का खेल और दौड़ आदि भी आयोजित किया जाता है, बांस के पांच से दस फीट के टुकड़े लेकर उसमें दो तीन फीट की ऊंचाई पर एक दूसरे बांस के टुकड़े को चीरकर बांध दिया जाता है फिर उसमें चढ़कर खिलाड़ी रच्च-रच्च बजाकर कूदते दौड़ते हैं इसकी ऊंचाई कभी-कभी दस-दस फीट ऊंची भी होती है यह संतुलन का खेल है।

धंसऊला या गड़उला- इस खेल को वरसात के समय या गीली जमीन में खेला जाता है लोहे का एक नुकीला एक फीट लम्बा टुकड़ा लेकर खिलाड़ी इसे बिना किसी चीज से ठोंके जमीन में गड़ाते हैं, जहां यह गड़कर खड़ा हो जाता है उसे फिर उखाड़कर फिर से फेंककर धंसाते हैं, जब तक गली में धंसाते या गड़ाते गांव के बाहर जाते हैं जब यथा फेंकने पर यह नहीं गड़ता तो वही से दांव देने वाला खिलाड़ी एक पांव में दौड़ता-दौड़ता वहीं आता है यदि उसने कहीं बीच में दोनों पांव रख दिये या थक कर गिर गया तो वहां से दूसरा खिलाड़ी फिर से लोहे के टुकड़े को धंसाते-धंसाते गांव के बाहर ले जाता है इस तरह यह खेल चलता रहता है इस खेल खिलाड़ी की कुशलता इस बात में निहित होती है कि वह ऐसी जगह देख कर लोहे का टुकड़ा वहां पटके ताकि वह जमीन में धंस जाए, यदि जमीन सूखी होगी तो टुकड़ा नहीं धंसेगा।

खीला ठोंकऊला- खीला ठोंकउला भी लगभग इसी तरह का खेल है इसमें दो समूह होते हैं, और एक बड़ा खीला या लोहे का नुकीला डंडा लेकर उसे पत्थर से जमीन में ठोंकना होता है दूसरा समूह उसे ऐसा करने से रोकता एवं छूने को दौड़ाता है।

डंडा-कोलाउल या खरतोल- इस खेल में भी संख्या निर्धारित नहीं होती, खेल के शुरू में सभी खिलाड़ियों को पारी-पारी से नीचे झुककर अपने दोनों पैरों के बीच से अपने डंडे को पीछे की तरफ फेंकना होता है, जिस खिलाड़ी का डंडा कम दूर तक जाता है उसे ही दांव देना पड़ता है, पहले दांव देने वाले खिलाड़ी को दोनों हाथ सिर के ऊपर ले जाकर डंडे को रखे रहना पड़ता है फिर दूसरा खिलाड़ी अपने डंडे से उसके डंडे को गिराकर तुरंत अपने डंडे को किसी पत्थर या ईंट के टुकड़े पर रखना पड़ता है यदि वह तुरंत अपने डंडे को ऐसी जगह पर नहीं रख पाया और दांव देने वाले खिलाड़ी ने उसे छू लिया तो उसे दांव देना पड़ता है, खिलाड़ी दांव देने वाले खिलाड़ी के डंडे को अपने डंडे से फेंकते-सरकाते गांव के बाहर तक ले जाते हैं,फिर वहां से उसे एक पांव पर दौड़ते खेल के आरम्भ स्थल पर आना पड़ता है, गांव की गलियों में जहां कभी मिट्टी और गोबर के अलावा अन्य वस्तु नहीं होती थी तब यह खेल बहुत लोकप्रिय था खिलाड़ियों को दौड़-दौड़कर ऐसे स्थान चिन्हित कर अपने को बचाना होता था, अब गांव की गलियां फर्शीकरण और सिमेन्टीकरण के पश्चात् अन्य वस्तु निर्धारित कर यह खेल खेलना होता है या गांव के बाहर भांठा या मैदान में यह खेल खेला जाता है।

इन खेलों को ज्यादातर पुरूषों या बालकों द्वारा खेला जाता रहा है हम कुछ बालिकाओं द्वारा खेली जाने वाले खेलों की भी याद कर लें इन खेलों में ज्यादातर खेलों के साथ-साथा गीत-गायन भी जुड़ा हुआ है गांवों में बालिकाओं द्वारा खेली जानेवाली फुकड़ी का खेल यह शक्ति और चुस्ती फुर्ती का खेल है इसमें बालिकायें जमीन में ऊकडू बैठकर बारी-बारी से दोनों पैरों को तेजी से आगे पीछे करती हुई गाती जाती हैं-

फुकड़ी फू रे भई फुगड़ी फू , गोबर दे बछरू गोबर दे
चारों खूंट ल लीपन दे, चारों देरानी ल बइठन दे
अपन खाथें गूदा-गूदा, मोला देथें बीजा-बीजा
ए बीजा ल काए करहूं, रहि जाहूं तीजा
तीजा के बिहान दिन, सरी-सरी लुगरा
हेर दे भउजी कपाट के खीला, चिऊं-चिऊं करैं मंजूर के पिला
एक गोड़ मैं खजूर, कतेक ल मानौं मैं देवर ससुर
भरे-भरे डलिया, पाके गोंदलिया, राजा घर के पुतरी, खेलन दे फुगड़ी
फुकड़ी फू रे भई फुगड़ी फू ,

और अंत में,

हारे डऊकी हारे रे, लीम तरी पसारे रे
लीम मोर भईया, तैं मोर भऊजइया

इस गीत के कई पाठ थोड़े बदलाव के साथ अलग-अलग प्रचलित हैं।

एक खेलगीत इस प्रकार है- **'घोड़ा बदाम छाई-पीछे देखो मार खाई'**

इस खेल में बालक-बालिकाएं गोल घेरा बनाकर बैठे होते हैं जो बालक दांव देता है वह रूमाल को ऐंठकर एक सांट (गांठदार) बना लेता है तथा चारों तरफ घूमकर वह सांट किसी बच्चे के पीछे गिरा देता है, इस बीच बच्चे इस गीत को दोहराते रहते हैं यदि बच्चे को पता चल जाता है तो वह उसे उठाकर दांव देने वाले बच्चे को दौड़ता है और वह बच्चा दौड़कर खाली किये स्थान पर बैठ जाता है और यदि बच्चे को पीछे गिराए सांट का पता नहीं चलता तो दांव देनेवाला बच्चा सांट उठाकर बच्चे को मारते हुए दोबारा घूमकर खाली स्थान पर बैठाता है इस तरह यह खेल चलता रहता है।

कुछ खेलगीत इस प्रकार है-

अटकन बटकन दही चटाका, लउहा लाटा बनके कांटा
तू रू.रू.रू. पानी गिरै, सावन मा करेला फूलै
चल-चल बिटिया गंगा जाइ, गंगा ले गोदावरी
पक्का-पक्का आमा खाबो, आमा के डारा टूटगै
भरे कटोरा फूट गै।
अत्तल के रोटी पत्तल के दाल, खावथे छक के गोंदली पताल
मारिन थपरा उड़ागै बाल

एक खेलगीत है- हाथी घोड़ा पालकी जय कन्हैया लाल की। दो बच्चे एक दूसरे के कोहनी को इस तरह पकड़ते हैं कि तीसरे बच्चे को उसमें पालकी की तरह बैठाकर उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं और यह गीत सब बच्चे मिलकर गाते रहते हैं।

एक अन्य गीत **" केऊं मेंऊं मेंकरा के झाला, कन्हैया गावै आल्हा"**

इसमें दो बच्चे दोनों हाथ से एक दूसरे के कान पकड़कर झूल-झूलकर गाते रहते हैं।

लड़कियों द्वारा अक्ती के समय समूह बनाकर गुड्डे-गुड़ियों का ब्याह रचाया जाता है दो समूह पूरे विविध-विधान से व्याह की रस्में करते हैं तथा शादी के अवसर पर गाए जाने वाले गीत गाती हैं

इस तरह हम देखते हैं कि हमारे छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचल में जो खेल प्राचीन समय से प्रचलित थे उनसे समाज में प्रचलित रीति-नीति, सामाजिक-आर्थिक विषमता का पता चलता है। अधिकांश खेल ऐसे हैं जिनमें किसी विशेष संसाधनों की आवश्यकता नहीं पड़ती तथा इन खेलों में सभी वर्गों की सहभागिता सम्भव है। समाज में वदलाव हुआ है समाज आगे बढ़ा है परन्तु खेलों पर बाजार की ताकतें हावी हो गई हैं अब ऐसे खेल प्रचलित हैं जो समाज के बड़े हिस्से की पहुंच से दूर हैं क्रिकेट, हाकी, टेनिस, बेडमिन्टम आदि इसके उदाहरण हैं। विलासपुर जैसे छोटे शहर में बिलियर्ड की टेबलें आ गई हैं शिक्षा, स्वास्थ्य की तरह खेल भी मध्यम एवं उच्च वर्गों की ही पहुंच में हैं, समाज की विषमता को इन परिस्थितियों ने और तीखा किया है। ज्यादातर प्रार्चीन ग्रामीण खेल लगभग भुला दिये गए हैं, ये हमारी परम्परा और विरासत को भुलाने जैसा है। इन्हें संरक्षित और संवर्धित करने की आवश्यकता है राज्य के अलावा अन्य संस्थाओं को भी इसके लिये सामने आना होगा, जिस तरह पुरानी कलाओं को बचाने की कोशिसें शुरू हुई हैं, इस क्षेत्र में भी प्रयास करना होगा, इनका डाक्यूमेन्टेशन (दस्तावेजीकरण) करने की जरूरत है। मीडिया को भी इन पर ध्याम केन्द्रित करना होगा, विकसित देशों में अपनी परम्परागत प्राचीन खेलों को जिस तरह संरक्षित किया गया है हमें भी इनका विकास करना होगा नई पीढ़ी का ध्यान इनकी तरफ दिलाना होगा, तथा इन खेलों के जानकारों को चिन्हित करना होगा।

प्रताप ठाकुर
किलावार्ड, जूना बिलासपुर

छत्तीसगढ़ के खेल-बाल गीत

- श्रीमती शान्ति यदु

खेलना मनुष्य की एक मूल वृत्ति एवं नैसर्गिक प्रक्रिया है। खेलों एवं अन्य कार्यों में भिन्नता दिखलाइ पड़ती है। खेल, थके-हारे मनुष्य और नित्य प्रतिदिन के जीवन-संघर्षों की थकान को मिटाकर उसे नयी स्फूर्ति और ऊर्जा प्रदान करते हैं। चूंकि खेलना मनुष्य की एक सहज वृत्ति है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही साथ खेलों एवं खेल-गीतों का भी आविर्भाव हुआ होगा। वस्तुतः मनुष्य की अन्य अनेक आवश्यकताओं की तरह ही, मनोरंजन भी एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। अतः खेलों का भी उद्भव और विकास मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप ही हुआ होगा।

भारत के अन्य प्रान्तों की तरह छत्तीसगढ़ में भी खेलों की परम्परा एवं अस्तित्व अति प्राचीनकाल से निरंतर अस्तित्व में है। यदि हम छत्तीसगढ़ के बाल खेलों एवं बाल खेल गीतों को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि इनमें वाणी-विलास, तुकबन्दियों, लयबद्ध छन्दों एवं ध्वन्यात्मक संगीत का प्राधान्य है। छत्तीसगढ़ के बाल खेल-गीतों को निम्न रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. शिशुओं को खिलाने-बहलाने एवं सुलाने के लिए उपयोग किए जाने वाले खेल बालगीत। इन खेल बाल गीतों में प्रायः 'चंदा मामा' जैसे प्राकृतिक उपादानों का प्रयोग किया जाता है।

2. खेलों से पूर्व गाये जाने वाले खेल बाल गीत। इन गीतों में संवाद चलता है। उदाहरण के लिए इसके अंतर्गत 'मुर्गा गीत' को लिया जा सकता है।

3. खेलों के बीच चलने वाले खेल बाल गीत। इनके अंतर्गत 'खुडुवा' (कबड्डी) आदि जैसे खेल बाल गीतों को रखा जा सकता है।

4. चिढ़ाने और कसम उतारने वाले खेल गीत जैसे कि -

'नदिया के तीर-तीर पान सुपारी।
तोर किया ला भगवान उतारी।।

5. जीवन दर्शन से संबंधित खेल बाल गीत जैसे कि 'अटकन-मटकन'

6. सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन का चित्रण करने वाले खेल बाल गीत। जैसे कि 'फुगड़ी' आदि बालिका खेल गीत।

छत्तीसगढ़ के खेल बाल गीतों को उत्कीर्ण लोक-साहित्य के अंतर्गत लिया जा सकता है। प्रायः सभी खेल बाल गीतों में वाणी-विलास एवं लयात्मकता की प्रधानता रहती है।

छत्तीसगढ़ के खेलों एवं बाल गीतों को निम्न प्रकार से भी विभाजित किया जा सकता है-

1. बड़े बालकों के खेल - इसके अंतर्गत 'खुडुवा' डांडी-पौहा, भौंरा आदि को लिया जा सकता है।

2. छोटे बालकों के खेल - इन बाल खेलों में 'कोबी', 'धायगोड़' करम्भा आदि खेल प्रचलन में है।

3. बालिकाओं के खेल - इनमें प्रमुख रूप से 'फुगड़ी' 'घेर-खो-खो', 'गोटा' आदि खेलों को लिया जा सकता है।

यद्यपि पहेलियों को लोक-भाषा, साहित्य के अंतर्गत लिया जाता है, किन्तु इनमें बूझने-बताने की प्रकृति होने के कारण और 'दलगत संवादशीलता होने के कारण इन्हें खेल-गीतों में भी शामिल किया जा सकता है।

छत्तीसगढ़ के खेल बाल-गीतों में बच्चों में आत्म-विश्वास, इच्छा-शक्ति, साहस, सामूहिक भावना, अनुशासन प्रियता, नेतृत्व-क्षमता, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति सामर्थ्य, परस्पर एकता, सहृदयता, लगन, उत्साह, सहन-शीलता, दृढ़संकल्पी भावना आदि के विकास के लिए पर्याप्त उत्प्रेरक शक्ति विद्यमान है। खेलों की हार-जीत, मनुष्य को जीवन में भी संघर्षों के बीच जीने की कला सिखलाती है। इस तरह से खेल बच्चों को शारीरिक, मानसिक एवं मनौवैज्ञानिक ढंग भावी जीवन के लिए प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से तैयार करते हैं और उन्हें जीवन के संघर्षों से जूझने के लिए उनका मार्ग-प्रशस्त करने के साथ-साथ उन्हें दिशा-निर्देश भी देते हैं।

श्रीमती शान्ति यदु
नलघर चौक, बैरन बाजार
रायपुर, छत्तीसगढ़
दूरभाष - 0771-2420370

सामाजिक जीवन के सांस्कृतिक झरोखे
"बाल-खेल"

-डॉ. मृणालिका ओझा

उस वक्त मेरे अधरों पर हल्की मीठी हँसी रह-रह कर हलक रही थी, क्योंकि आंगन में खेलते हुए कुछ बच्चे तू-तू, मैं-मैं में उलझ गए थे। बच्चों के तू-तू, मैं-मैं, प्रायः बहुत गंभीर नहीं होते, और यदि उसमें बड़े आड़े न आएँ तब तो उसके मीतर विशुद्धतः स्वाभिमान की 'पेल-ढपेल' या खींचातानी होती है। इसका एक आनंद बुढ़ापे तक हमारी स्मृतियों के एलबम में कैद रहता है।

बच्चे खेल रहे थे- 'झूम बाई झूम' इस खेल में एक बाल-गीत प्रयुक्त होता है। इसी खेल-गीत की कुछ पंक्तियों के लिए बच्चे एकमत नहीं थे। अंततः मैंने उनसे पूछ ही लिया कि लड़ाई किस बात पर है? रूनझुन का कहना था 'आंटी डॉक्टर की सुई हल्दी लगाऊँगी' यही बात सही है। इधर सरिता का कहना था-"दरजी की सुई टूटी, लोहार बुलाऊँगी ।

"लोहार का लोहा टूटा, घोड़ा दौड़ाऊँगी।" अपने अपने गीत के पक्ष में बच्चों ने जो तर्क दिए, वे आश्चर्यजनक थे। रूनझुन का कहना था कि डॉक्टर की सुई टूट गई, तो क्या हुआ, चोट में हल्दी भी तो लगा सकते हैं, इसीलिए मेरा गीत सही है। हल्दी से चोट ठीक हो जाती है, हमारी नानी सही बोलती है।

अब सरिता का कहना था, कि सुई तो लोहे से बनती है, इसलिए लोहार बुलाएँगे, और खेल में डॉक्टर का तो पेट फूटता है।

उनके इस झगड़े और तर्क ने मुझे सोचने को विवश को विवश किया। मुझे लगा छत्तीसगढ़ के ये खेल वास्तव में हमारे सामाजिक जीवन के व्यवहारों को सीखने के बेहतर साधन हैं। बच्चों को सामाजिक व्यवहार सिखाना हो, तो रटा-पढ़ा कर नहीं सिखाया जा सकता। वर्तमान युग मशीनों के रास्ते चल रहा है। बच्चों के पास माता-पिता या बड़े- बूढ़ों के साथ संवाद के लिए समय नहीं है। इसीलिए वे सामाजिक-व्यवहार को अपेक्षाकृत देर से सीखते है। पढ़ रट कर सीखना- सिखाना जिस जमाने में नहीं था, उन दिनों, खेल-खेल में बच्चे ढेरों बातें सीख जाते थे। खेलों के निर्माण में दो बातें प्रमुखतः दिखाई देती है, एक तो बड़ों के काम काज का अपने ढंग से अनुकरण, और दुसरा किसी धटना की नकल, फिर धीरे-धीरे अलग- अलग क्षेत्रों मे सुविकसित होते हुए ये नकल एक नये खेल की शक्ल ले लेते है।

प्रमुख खेलों में यहाँ केवल एक-दो खेलों की ही चर्चा करूँगी। सबसे पहले में बात करूँगी छत्तीसगढ़ में 'पोले' के अवसर पर खेले जाने वाले खेल "दिया-चुकिया" की। इसमें मिटटी के ढेरों बर्तनों से कन्यायें खेलती है- गृहस्थ जीवन के (विशेषतः रसोई) खेल। यह खेल गृहस्थ जीवन के व्यवहारों को सीखने में पूर्णतः सहायक होता है। कन्यायें पूरी तरह से एक गृहिणी के व्यवहारो की नकल करती हैं। नहा-धोकर अपनी रसोई लेकर बैठ जाती हैं। खुद बनाती हैं, और परिवार भर को खिलाती हैं। खुद भी उन्हें खाना चाहिए, यह बात तो वे लगभग भूल ही जाती है। किन-किन पात्रों में, कौन- कौन से अनाज या खाद्य पदार्थ रखना, किस बर्तन का उपयोग किस चीज को बनाते समय करना चाहिए, यह भी वे इसी से सीख जाती हैं। जैसे- कढ़ाई, गंजी, बाटलोही, कन्नौजी, कुड़ेरिया, हंउला गंगार, बाल्टी, कमंडल, गिलास, चरू, लोटा, थाली, होरसा, बेलना, तावा, आदि का। इसी प्रकार इसी दिन खेला जाने वाला बैलों का खेल बालकों को कृषक जीवन की जानकारी और सीख देता था। कैसे बैलगाड़ी के चक्के बनाएं, बैल नाथें, उन्हें दौड़ायें बैलों को लादा जाने वाला 'लदना' खेतों पर जाने वाली तैयारियों का ही पूर्वाभ्यास होता है, जिसे कन्या सीखती है, और गृहिर्णा के रूप में अपना दायित्व-निर्वाह करते समय, इस ज्ञान का उपयोग करती है।

प्राचीन समय के खेल "घर-गुंदिया" को आधुनिक भाषा में "इंटीरियर डेकोरेशन" की शिक्षा देने वाला, एक वहुत ही महत्वपूर्ण खेल है। इस खेल में गृहस्थ जीवन की सोच एवं कल्पनाओं को एक खुला आकाश मिलता है। धर में कितने कमरे होने चाहिए किस कमरे में क्या होना चाहिए, किस कमरे को कैसे सजाना चाहिए आदि। कल्पनाओं को सार्थक करने का यह एक सुंदर खेल। इस खेल में "भवन-शिल्प" की कल्पना भी विकसित है। इस खेल के संवंध में लोक-धारणा है, कि ऐसा भरा-पूरा धर गुंदिया, सजा संवार कर दान करने पर, दान-दाता को भी जीवन में ऐसा ही सजा-संवारा भरा-पूरा, बड़ा धर भविष्य में मिलता है।

"चुड़ी-लुकाउल" या खोज-खजाना को भी कम न समझें। किस प्रकार छोटे-मोटे संकेतों द्वारा, किसी मूल-स्थान तक पहुंचा जा सकता है, उसे ढूंढा जा सकता है, यही वातें इस खेल से, वच्चे सीखते हैं। बच्चे इसी वृत्ति को मजबूत कर जीवन के महत्वपूर्ण खोजों में सफल हो सकते हैं। इसे हम जासूसी-वृत्ति की ओर प्रेरित करने वाला, और कड़ी सुरक्षा की अभ्यास-वृत्ति सिखाने वाला खेल कह सकते है।

अव हम छत्तीसगढ़ की 'गेड़ी' की वात करें, और इसे भी महज एक मनोरंजन का सामान्य खेल न समझें। गेड़ी के लंवे-लंवे डग, उस युग की कहानी सुनाते हैं, जब मानव के पास चक्के नहीं हुआ करते थे। परिवहन के साधन के रूप में कुछ नहीं था, और औजार भी पत्थर और लकड़ी के अतिरिक्त कुछ नहीं। ऐसे कठिन समय मं अपनी 'गति' वढ़ाने के लिए कम समय में अधिक यात्रा पूर्ण करने के लिए अर्थात लंवे-लंवे डग भरने के लिए मानव ने 'गेंड़ी' का अविष्कार किया और वच्चों को मिला 'गेड़ी' का अनूठा खेल।

गेंड़ी मानव द्वारा दुर्गम रास्ते को कम समय में तय करने वाला, लंवे-लंवे डग भरने का सवसे वढ़ियां साधन था। किशोरवय से ही ग्रामीण बच्चे इस खेल को सीखना प्रारंभ कर देते थे। वे लोग गेंड़ी पर दौड़ सकते थे, नाच सकते थे, और कम समय में लंवी यात्रा पूरी कर सकते थे। इतना ही नहीं अगर रास्ते में हिंसक पशुओं या असामाजिक तत्वों का सामना करना पड़े, तो यही गेड़ी हथियार का काम करती थी।

इस तरह हम देखते हैं कि छत्तीसगढ़ के ग्राम्य-खेलों का सामाजिक जीवन से गहरा संबंध है। वे हमारे समाज के व्यवहारों को सीखने सिखाने की एक पाठशाला हैं। इसमें (खेल में) वच्चे अनेकानेक व्यवहार सीख लेते हैं- वह भी विल्कुल हंसते-हंसते। इतनी क्षिप्र गति से और मनोरंजक ढंग से बच्चों को सामाजिक व्यवहार आज की पाठशालाओं में सीखा पाना मुमकिन नहीं। यदि इन छत्तीसगढ़ी खेलों को तत्कालीन समाज को देखने-समझने का एक सुंदर सांस्कृतिक झरोखा कहा जाए तो शायद गलत नहीं होगा।

डॉ. मृणालिका ओझा
बंजारी मंदिर के पास
कुशालपुर, रायपुर
फोन- 0771-2243414

छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक दर्शनः खेलगीत 'फुगड़ी'

-डॉ. अनसूया अग्रवाल

मेहनतकश अंचल छत्तीसगढ़ अगर 'धान के कटोरा' आये तब लोकगीत के हड़िया घलव ए। कावर कि ईहाँ के लोकगीत मं संपूर्ण सृष्टि ह समाये हे। छत्तीसगढ़ के लोकगीत संग ईहाँ के भुईयाँ गाथे, अकास गाथे, चंदा-सुरूज गाथे, बदरी-बिजरी गाथे, नदियाँ-नरवाँ गाथे, जंगल-पहाड़ गाथे; प्रकृति के तत्व-तत्व ह गाथे, जम्मों मनखे ह गाथे, जम्मो समाज अऊ गाँव ह गाथे येखरे सेती ईहाँ के लोकगीत ईहाँ के माटी कस सास्वत (शाश्वत) अजेय अऊ अमर हे।

छत्तीसगढ़ के लोकगीत ह प्रकृति असन सहज हे उन्मुक्त हे अऊ बनावटीपन से मुक्त हे, अइसनेच लोकगीत से प्रभावित होके पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ह 'हिंदी साहित्य के भूमिका' नांव के अपन ग्रंथ मं लिखे हे 'लोकगीत की एक-एक लहू के चित्रस पर रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ, खंडिताएं और धीराएँ निछावर की जा सकती हैं क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और अलंकारों से लदी होकर भी निस्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिए किसी शास्त्र विशेष की मुखापेक्षी नहीं है। और अपने आप में परिपूर्ण हैं।" छत्तीसगढ़ी लोकगीतों की भूमिका : (डॉ0 नारायण लाल परमार पृ. 14)

सचमुच, अगर सागर कस दूरिहा-दूरिहा तक बगरे छत्तीसगढ़ के गाँव में डूबकी लगाके, मनि (मणि) मानिक (माणिक्य) अऊ हीरा-मोती कस जग-जग बरत; ईहाँ के संख्यातीत लोकगीत रूपी रत्न ल जमा करके विद्वान साहित्यकार रूपी रत्नपारखी के आगूं मं रखबोन, तब वहू मन अचरज में पर जाही अऊ येखर जगर-मगर चमक, प्रकाश उऊ आलोक से हिंदी जगत आलोकित हो उठही।

ये लोकगीत मंध एक से बढ़के एक सुंदर कल्पना होथे, उपमा होथे, प्रतीक होथे, प्रयोग होथे। कहूं लोकगीत के एक-एक शब्द के विस्लेषन (विश्लेषण) करे लगबों तब गागर मं सागर भरे खातिर प्रसिद्ध साहित्य जगत के बड़े-बड़े साहित्यकार मन घलव दाँतो तले ऊंगली दबा लेंही। ये लोकगीत के एक-एक अक्षर ह शब्दकोश के एक-एक शब्द कस हे जिन्खर उच्चारण करते ही वोखर से संबंधित अर्थ ह खुलके सामने आ जाये। जईसे माला मं किसम-किसम के फूल ह गुथायें रहिथेय तईसे लोकगीत मं किसम-किसम के अर्थवान शब्द ह गूथाये रहिथेय।

आओ बात करन; नोनी मनके खेलगीत "फगड़ी" के यें 'बाहिर-भीतर नई होवईया' (रजस्वला नहीं होने वाली) नोनी मन के खेलगीत आये लेकिन ये उन्खर मनोरंजन अऊ मन बहलाव के गीत मात्र नोहै बल्कि येमों छत्तीसगढ़ के संस्कृति के अद्भूत दर्शन समाये हवे। ये छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक दर्शनशास्त्र आये।

डॉ. मन्नूलाल यदु ह कहिथे "फुगड़ी छत्तीसगढ़ी संस्कृति का दर्शनशास्त्र है। नारी जीवन का ऐसा दर्शन जो विश्व साहित्य में बेजोड़ है।" (फुगड़ी-डॉ. मन्नूलाल यदु, प्र. 16)

अईसे वो छत्तीसगढ़ मं बाली उमर के लईकामन के खेल से जुड़े बहुत अकन खेलगीत हे, जईसे- अटकन-बटकन, घानी-मुनी, डॉडी-पोहा, भौंरा, कौंऊ-मौंऊ, डुडुला-खुडुवा, (कबड्डी) गेंड़ी आदि लेकिन 'फुगड़ी' के बाते अलग हे। 'फुगड़ी' खेलगीत ह ईहाँ के सामाजिक व्यवस्था के उपज आये। चूँकि ये नारी जाति बर निर्धारित गीत आये तब येमों नारी जाति के कातर, दुःख, पीरा ह बड़ सुंदर रूप मं अभिव्यक्त होय हवे।

बड़े से बड़े सीख देनें, बड़े से बड़े उलाहना देंने अऊ अपन अंतर्वेदना ल अभिव्यक्त करे में ये गीत मन ह छत्तीसगढ़ के नारी जाति के बड़ मदद करे हे। हृदय मं लगे हेस, पीरा या इच्छा ल कोनों कारन से छत्तीसगढ़ के नारी ह जुबान में नईला पाये, तऊन ला वो ह गीत के लड़ी मं पिरोके, डंका के चोट में समाज के आगे मं गा देथे उऊ समाज ल सोंचे बर विवश होना पर जाथे, ईही ये गीत मन के कमाल आये।

'फुगड़ी गीत' नारीबर, नारी के, नारी द्वारा गाये जाने वाला बालगीत आये। गीत के पाँच खंड माने जा सकत हे। (भावाभिव्यकित के आधार पे)--

पहिली खंड --- फुगड़ी फूं-फूं रे फुगड़ी फूं-फूं

दूसर खंड --- गोबर दे बछरू गोबर दे, चारो खूंट ल लीपन दे,
चारो देरनियां ल बइटन दे।

तीसर खंड ---- अपन खाथे गुदा-गुदा, हमला देथे बीजा।
ये बीजा ल लेके का करबो, रहि जाबो तीजा।

चऊथा खंड ---- तीजा के बिहान दिन, सरी-सरी लुगरा।
चींव-चांव करे मंजूर के पीला, हेर दे भऊजी कपाट के खीला।

पांचवीं खंड ---- एक गोड़ मं लाल भाजी, एक गोड़ मं कपूर।
कतेक ल मानव, मय देवर-ससुर
फुगड़ी फूं-फूं रे .....

सवले पहिली फुगड़ी के नांव ऊपर बिचार करन, पहिली खंउ उपर विचार करन - फुगड़ी शब्द ह बने हें फु+गड़ी से। येमां पहिली वर्ण 'फूं' ह मंत्रोच्चार के समय प्रयुक्त होने वाला वो अक्षर अऊ ध्वनि आये जेखर प्रयोग फूंक मारत समय बईगा-गुनियॉं, फुकईया-झरईया मन पीड़ित के व्यथा ल दूर भगाये खातिर करथें। तव सोंचों कि नारी जाति के उत्पीड़न, अत्याचार उऊ शोषण के व्यथा ल दूर भगाये खातिर मंत्र से येखर तादाम्य जोड़े गेहे।

फेर आये हें गड़ी शब्द। छत्तीसगढ़ में गड़ी के मतलब होथे - 'खेल में संग देवईया संगवारी' सामान्यतः खेल मं दू दल होथे अऊ हर दल ह अपन-अपन गड़ी चुनथे किंतु फुगड़ी खेल ल कई झन नोनी मन मिल-जुरके खेलथें येखरे सेती सब्बो खेलइया मन एक-दूसर के गड़ी होथें।

ये तरह से नोनी मन मिल-जुरके, एक संग बईठके, मंत्रोच्चार, हाव-भाव अऊ देंह के अंग संचालन द्वारा अपन पीरा ल, व्यथा ल दूर भगाये खातिर फुगड़ी खेलथें। केहे के मतलब फुगड़ी ल मंत्रोच्चार द्वारा पीरा ल दूर भगाये के प्रतीक गीत माने जा सकत हे।

गॉव के दूसर खंड ल मंगलाचरण या याचनाखंड मा कहे जा सकत हे। ये खंड के पहिली पंक्ति हे ... . 'गोबर दे बछरू गोबर दे' अर्थात 'हे बछिया गोबर दे' छत्तीसगढ़ में केई भी मांगलिक या विशेष कार्य होथे जव सवले पहिली अपन ईष्ट देव ल सुमर के प्राचीन अऊ सुंदर परंपरा हे। ये परंपरा के तहत सामान्यतः 'गणपति' के पहिली आहवान करे जाथे किंतु ये खेलगीत मंत्रोवत्स (बछिया) के आहवान करे गेहे-कावर कि छत्तीसगढ़ ह कृषि के प्रधान क्षेत्र आये अतः यहां के कृषी-कार्य में गोवंश के अत्यधिक उपयोगिता हवे; दूसर बात गाय मं समस्त देव के वास माने जाथे अऊ जन-जन द्वारा गाय ल पूजे जाथे। येखरे सेती ये खेलगीत के अज्ञात सिरजनकार (सृजनकार) ह गोवत्स के आहवान करे हे, गोवत्स से याचना करे हे। अब विचारणीय बात ये हे कि गाय ल छोड़ के बछिया के सुमिरन के वजह काये? तव येखर कार हे कि भले ही हमर समाज मं नारी के मातृ शक्ति रूप के महत्व हे लेकिन अल्पव्यस्क अऊ निर्दोष होये के सेती नारी से अधिक कन्या के महत्व हे, अऊ वोला देवी रूप में पूजे भी जाथे। अऊ चूंकि फुगड़ी अल्पव्यस्क लड़की मन के

खेल आये तव वय साम्य के भावना भी निहित हो जाथे। वछिया के उल्लेख करे अऊ वोखर से याचना करे करे के तात्पर्य यहां वोखर आव्हान करना भी है। अईसे यूं तो गऊ के दूध, मूत्र अऊ गोवर सव उपयोगी हे अऊ सबके महत्ता भी हे लेकिन यहां पर वछिया से 'गोवर' ही देके याचना कावर करे जाथे, येखर भी गूढ़ कारन हे - एक तो ये स्थल शुद्धि के लिए उपयोगी हे। दूसर येला मनखे मन ला खवा के उन्खर पाप अऊ दोष के प्रायश्चित कराके उन्खर तन-मन अऊ आतमा ल भी शुद्ध करे कि मान्यता हवे- अऊ जव तक स्थल के साथ-तन-मन ह शुद्ध अऊ सात्विक नहीं होही-कोई मांगलिक कार्य भला कईसे होही? येखर सेती 'गोवर' के याचना 'गोवत्स' (वछिया) से करे जाथे।

ये खंड के दूसर लाईन हे 'चारो खूंट ल लीपन दे' शव्दार्थ तो स्पष्ट हे किंतु गीत मं चारो खूंट के प्रयोग लाक्षणिक हे। चारों खूंट-मानें चारो दिशा- उत्तर, दक्षिण, पूरव अऊ पश्चिम - मानें संपूर्ण विश्व - मानें सृष्टि के कोंटा-कोंटा। संवेदनशील रचनाकार के कामना बड़ उदार हे, वो चारो खूंट अर्थात विश्व के कोंटा-कोंटा ल लीपे के अर्थात शुद्ध बनाये के करे के इच्छुक हे। खंड के तीसर लाईन हे- 'चारो देरनियां ल बईठन दे' अर्थात चारो देवरानी ल बईठन दे। ये याचना के अंतिम पंक्ति से संपन्न ईहॉ के जन-जन में बड़े-छोटे के प्रति आदर, स्नेह अऊ कल्याण के भावना कूट-कूट के भरे हे। ईही सुंदर संस्कार के तहत् घर के बउे बहू ल अर्थात जेठानी ह बड़े अर्थात ज्येष्ठ होय के सेती भगवान से प्रार्थना करये कि पहिली सव देरानी ल जोरियान दे, तव आगे के वुता वर सोंचवोंन। ये तरह से पारिवारिक संदर्भ में चारों देरानी के तात्पर्य अभिधात्मक हे लेकिन लाक्षणिक अर्थ में चार खूंट अर्थात चार पुरूषार्थ- अर्थ, धर्म, काम अऊ मोक्ष। अन्य संदर्भ में-साम, दाम, दंड, भेद। राष्ट्रीय परिवेश में विचार करन, तव चार वर्ण - ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य अऊ शुद्र। चार युग के अर्थ मं - सतयुग- त्रेतायुग, द्वापर युग अऊ कलियुग। सामाजिक व्यवस्था के रूप में सोंचन. तव चार आश्रम-ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ अऊ सन्यास अऊ भक्तिपरक अर्थ में चार धाम-बद्रीनाथ, द्वारिका. पुरी अऊ रामेश्वरम् वेद के अर्थ मं - ऋृगवेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद। ये चारो ल विठाये से तात्पर्य चारो मं संतुलन वनाये रखे के कामना से हे।

गीत के तीसर खंड हे-'अपन खाते गूदा-गूदा, हमला देथे बीजा-अर्थात खुद ह गूदा - गूदार अर्थात सारभाग ल खाथे अऊ हमला बीजा अर्थात निस्सार भाग ल देथे। लोकगीत के एक विशेषता होथे कि तो ह एक ही स्थान पे विभिन्न पात्र के प्रतिनिधित्व करत-करत भिन्न-भिन्न भाव ल व्यक्त करथे।

फुगड़ी गीत के ये तीसर खंड ह पूंजीपति वर्ग अर्थात शोषक वर्ग ऊपर आक्षेप करते हुए वितरण व्यवस्था के जबरदस्त असंतुलन पे प्रकाश डालथे। गूदा खवईया शोषक अर्थात् सबल वर्ग आये अऊ खाली बीजा पवईया शोषित अर्थात निर्बल वर्ग। अपन बात ल अऊ शोषण के चित्र ल स्पष्ट करे बर पाके आमा के उपमा दे गे हवे। आमा के गूदा अर्थात स्वाद अऊ पोषण के दृष्टि से फल के मज्जा भाग ल शोषक ह खाथे अऊगूदा खाये के बाद गोही मं थोड़-बहुत जऊन गूदा चटके रहिथे, अर्थात अवशेष रहिथे तऊन ल चाटे खातिर हमला अर्थात् शोषित वर्ग ल दे देथे।

कईसन सुंदर कल्पना अऊ अभिव्यक्त हे। छत्तीसगढ़ मं ये शोषण अनेक वर्ग द्वारा भिन्न-भिन्न तरह से हे। सामाजिक व्यवस्था के तहत् नारी जाति के शोषन करथे पुरूष जातिह। कृषक, ग्रामीण अऊ सर्वहारा वर्ग के शोषण करथे पूंजीपति वर्ग ह अऊ निम्न जाति, दलित जाति के शोषण करथे उच्च जाति ह। शोषण के ये सब्बो भाव के अभिव्यक्ति करे खातिर छत्तीसगढ़ के नारी पात्र के परिकल्पना करे गे हवे। ईंहो शोषण के प्रतिकार्थ आये-'फुगड़ी' वाचिका ह व्यथित होने। पहिली वर्ण व्यवस्था ल रेखांकित करथे-'अपन खाथे-गूदा-गूदा हमला देथे बीजा' फेर अपन मानसिकता के अनुसार वितरण व्यवस्था से उत्पन्न असंतुलन अन्य शोषण के विद्रोह करत हुए आगाह करथे। - 'ये बीजा ला का करबो, रहि जाबो तीजा' - अर्थात् भादो महिना के शुक्ल पक्ष के तृतीया। ये दिन हिंदू नारी मन अपन मईके में सुहाग के मंगल कामना से निर्जला उपास रहिके शंकर भगवान के पूजा करथें अऊ दूसर दिन उपास तोड़थें। ये तीजा तिहार मं तीन महत्वपूर्ण बात होथे - एक तो

तीजा उपास मं अन्न जल ग्रहण नई करे जाये, दूसर-शंकर भगवान के पूजा करे जाये अऊ तीसर - तीजा के बिहान दिन नवां लुगरा पहिर के उपास खोले खातिर पूजा करे जाथे। ये गीत मं तीजा व्रत ह 'गूदा-बीजा' के अनुपात में असंतुलन से उत्पन्न आंदोलन के प्रतीक आये। यदि वितरण में असंतुलन हे, भेदभाव हे तो बीजा पाके संतुष्ट नई हो जाना हे बल्कि अन्यायपूर्ण वितरण के विरोध में निर्जला उपास रहिके जगत पिता ईश्वर से व्यथा निवेदन करना हे। अऊ बात सामाजिक अधिकार वितरण में असंतुलन से हे-तब हड़ताल करना हे। आंदोलन करना हे। ये आंदोलन कई तरहसे होथे - कलमबन्द हड़ताल, काली पट्टी वाला हड़ताल, भूख हड़ताल आदि। आंदोलन के सीधा-सीधा तात्पर्य अपन आवाज ल प्रमुख नायक तक पहुंचाना हे। ये पंक्ति मं तीजा उपास ह भूख हड़ताल के भी प्रतीक आये।

प्रार्थना अऊ आंदोलन के प्रभाव प्रायः सकारात्मक होथे, येखर सेती अगला पंक्ति बनीस - तीजा के बिहान दिन सरी-सरी लुगरा। अर्थात उपास रेहे के बाद तीजा के बिहान दिन नवां लुगरा-मिलीस अऊ ये तरह से अनुकूल परिनाम के प्राप्ति से दुःख, ताप, पीरा, कष्ट ह दूर होईस। लेकिन गीत ईहीमेर नई सीराये।

गीत के चऊथा खंड हे - 'चींव-चॉव करे मंजूर के पीला, हेर दे भऊजी कपाट के खीला। शब्दार्थ रूप मंजूर (मयूर) के पीला (शावक) चींव-चांव (कुलबुल-कुलबुल) करत हे भऊजी (भाभी) कपाट (दरवाजा के खीला) (कील) ल खोल दे हवे।

नोनी अपन मईके मं तीजा मनावत हे, वहां वोखर भऊजी हवे। लड़की ह देखत हे कि भऊजी ह बहुत यातना सहत हे तब अपन भौजी ल संबोधित करत हुए वोखर माध्यम से संपूर्ण नारी जाति अऊ शोषित वर्ग के तरफ से तो आवाज उठाथे, विद्रोह के आवाज। भौजी ह संपूर्ण शोषित वर्ग के प्रतिनिधि आये अऊ वोखर अंतर्शक्ति मं कुलबुलावत विरोध के प्रतीक आये मोर शावक ह अऊ मर्यादा बंधन के प्रतीक आये कपाट के खीला ह; जऊन ल खोले बर कहत हे ननद ह अपन भौजी से। मयूर ह दिखे बर तो सुंदर, मासूम अऊ निरीह दिखथे। लेकिन खेले-खेल मं विषधर सांप ल तक मार डारथे वईसनेहे शोषित वर्ग दिखे मं भले निरीह अऊ कातर लगथे, लेकिन दरअसल वो अद्भूत शक्ति संपन्न होथे अऊ विषधर सरीखे शोषक, वर्ग के दमन करे में समर्थ होथे। सांकेतिक रूप मं वाचिका ह अपन भौजी के माध्यम से शोषित वर्ग ल मयूर कहिके अजेय बतावत हे अऊ विश्वास व्यक्त करत हे कि गूदा-बीजा के अनुचित बंटवारा के विराध मं यदि शोषित वर्ग ह आंदोलनरत् होही अऊ मर्यादा बंधन के खीला ल खोलके बंदीगृह से बाहिर आये के शक्ति देखाही तब शोषक वर्ग के सिर ल अवश्य कुचल देही।

ये मेर भौजी ह घर के बहुरिया आये, गॉव के बहुरिया आये, कृषक अऊ श्रमिक वर्ग के प्रतीक आये, निम्न, शोषित, दलित अऊ अपेक्षित वर्ग के प्रतीक आये। अऊ भौजी ल विरोध खातिर प्रेरित करत हे ननद ह; जऊन खुद मर्यादा बंधन से बंधे हे। एक बंधन ह दूसर बंधन ल, एक पीड़ित ह दूसर पीड़ित ल, एक बलहीन ह दूसर निर्बल ल, एक पीड़ित ह दूसर पीड़ित ल, एक बलहीन ह दूसर निर्बल ल मानवीय अऊ भावनात्मक संबल देवत हे, वाह रे हमर छत्तीसगढ़। खुद भूखे रहिवोन फेर अपन भूखे अतिथि के खातिर बर कुछु न कुछु उपक्रम जरूर करवोन, ये संस्कार सिर्फ छत्तीसगढ़ मं हे।

अऊ अंतिम पद हे - 'एक गोड़ मं लाल भाजी, एक गोड़ मं कपूर'। 'कतेक ल मानव, मैं देवर-ससुर' शब्दार्थ होईस एक गोड़ (पॉव) मं लाल भाजी अऊ दूसर गोड़ मं कपूर हवे। कहां तक मैं देवर-ससुर के मर्यादा ल मानव। अब देखो - ननद ह भौजी के इच्छा शक्ति ल उधीप्त करे के प्रयास करत रिहीस हे पूर्व पद मं, अऊ वोखर प्रयास के यथेष्ट प्रभाव परीस भऊजी के संकल्प शक्ति ऊपर। भौजी ह विरोध करही लेकिन मर्यादा ल तोड़ के नहीं, वो विरोध करही, लेकिन पूर्ण मनोयोग से नहीं। काबर कि पूर्ण मनोयोग से खतरा अधिक हे-कईसे ..? पूर्ण मनोयोग के परिचय देथे विलासिता, ऐश्वर्य अऊ स्वतंत्रता तो मिल जाही लेकिन येखर अति से जीवन के अध्यात्मिक पक्ष मं अंधकार बगर जाही तभे तो वो दुनों गोड़ से जीवन पथ म चलना चाहतेह - एक पग से चलके, जीवन यापन खातिर, लाल भाजी सदृश्य जीवन के केवल मूलभूत आवश्यकता के वो पूर्ति

चाहथे अऊ दूसर पग चलके जीवन के कपूर अर्थात जीवन के सुगंधित पक्ष, जीवन के आव्यात्मिक पक्ष ल प्राप्त करना चाहथे। अर्थात् भोग-विलास में लिप्त होके वो नरक के भोगी नई बनना चाहे। येखर सेती ये सब उठा-पटक में आत्मा विचार, भाव अशुद्ध मत होये, वोमा विकार मत आये, वो ये बात के पूरा ध्यान रखही।

अब विचारन कि लाल भाजी अऊ कपूर ल ही येदे बालगीत के उपादान काहे बनाये गेहे, चूंकि लाल भाजी ह छत्तीसगढ़ में सहजता से उपलब्ध हो जाथे, यद्यपि येमां पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में होथे लेकिन ये अपन संगत में आने वाला हर भोज्य पदार्थ ल अपन रंग में रंग लेथे, वईसने जीवन के आवश्यकता के यदि भरपूर पूर्ति होय लगही तव मनखे ह वुही में रंगे-रिही, भगवान डहार वोखर ध्यानेच नई जाही, तेखरे सेती भाजी ह 'कपूर' के घलव उल्लेख करत हवे। कपूर न केवल सुगंधित होथे अपितु जीवाणु नाशक अऊ स्फूर्तिदायक भी होथे वईसने आध्यात्मक ह न केवल जीवन ल सुगंध से भर देथे अपितु पाप नाश भी करथे। ये तरह से यहां पे कपूर ह जीवन के अध्यात्मिकता के प्रतीक स्वरूप यहां प्रयुकत होयहे।

अऊ अंतिम पंक्ति हे- 'कतेक ल मानव मैं 'देवर-ससुर'-देवर-ससुर अर्थात् मर्यादा। बहू ह मर्यादा के पूर्णतः विरोधी नही हे, वो स्वच्छन्वता के पूर्णतः आकांक्षी नई ए, लेकिन यदि मर्यादा ह, बंधन ह पैर के जंजीर बन जाही, ससुर-देवर ह मर्यादा बंधन के संतुलन में विकृति उत्पन्न कर देंही अऊ सुरक्षा के नाम पे बंधन के अतिरेक के प्रतिकार करना वोखर विवशता हो जाही। येखर सेती अंतिम पंक्ति में मानों बहू ह (देवर-ससुर) बंधन ल मानहूँ। तात्पर्य ये हे कि नायिका ह, बहू ह देवर-ससुर (मर्यादा) माने से पूर्णतः आपत्ति नई करय लेकिन अनावश्यक अऊ अनुचित मर्यादा के परित्याग बर भी वो दृढ़ संकल्पित हे। ये संकल्प बहू के ही नोहे, समस्त शोषित समुदाय के आये। यही 'फुगड़ी' के जीवनदर्शन आये। सांस्कृतिक दर्शन आये।

स्पष्ट हे कि फुगड़ी ह एक सामान्य खेलगीत मात्र नोहे। येमां नवों नवों पुरूषार्थ, नवों नीति, नवों वर्ण, नवों युग ह नवों परम्परा अऊ नवा व्याख्या के साथ संकल्प वद्ध हे। जेखर उद्देश्य विश्व शांति अऊ विश्व कल्याण हे। लेकिन अफसोस लोक के ये सरभरी ह सुखावत जावत हे, फुगड़ी खेल ह नंदावत जावत हे। जईसे दुष्ट सेना कोनों देश ल रौंद डारथे तईसनेहे आयातित संस्कृति ह, पाश्चात्य संस्कृति ह हमर जमीन, हमर सभ्यता, हमर संस्कार ल रौंदत जावत हे। समय हे - सम्हले जा सकत हे, अभी भी। देरी करबोन तव चिरई खेत ल चुग डारही अऊ वइटे-वइटे देखत रहिबो।

डॉ. अनसूया अग्रवाल
विभागाध्यक्ष, हिन्दी
शासकीय महाविद्यालय,
महासमुन्द -493445

लोक खेलों का संवर्धन आवश्यक

- शकुंतला तरार

लोक साहित्य किसी भी क्षेत्र का हो वह समृद्ध तव होता है जव परम्परागत नियमों का निर्वहन ईमानदारी पूर्वक होता रहे। परम्परागत नियमों से आशय रीति-रिवाज, संस्कार, संस्कृति की कोमल भावना, मन के भावों को उद्दीप्त करती हुई लोक-गीत-संगीत सामाजिकता के माध्यम से मानव और राष्ट्र को एक दूसरे से बांधे रखती है। इसके लिए हम बाल्यावस्था से ही आधार भूमि तैयार करते हैं। व्यैक्तिक जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति हमें बाल खेलों के रूप में प्राप्त होती है। लोक संस्कृति हमारे जीवन का वह उज्जवल पक्ष है जो सामुदायिक उमंग, उल्लास और आनंद के मध्य निश्छल मन का उद्गार प्रकट करता है। मानव हृदय के विकास के रूप में सौंदर्य की रचना करते हैं। यह कोई नहीं जानता कि बाल खेलों की रचना किसने की, कव की, कैसे हुई यह तो वस सहज अभिव्यक्ति है वस खेलते जाओ कुछ कहते जाओ चाहे वह केवल शब्दों के माध्यम से हो या फिर लयवद्ध तरीके से अभिव्यक्ति और यही बाल-गीतों के रूप में, बाल क्रीड़ओं के रूप में जनमानस में प्रचलित हो जाता है। ऐसा लगता है जैसे इन वाल गीतों का अंकुरण सीधे उर्वर धरती से हुआ है।

कभी-कभी विस्मयबोध होता है कि जव हम किसी ठेठ ग्रामीण परिवेश के मध्य पहुंचते हैं। जहां शिक्षा, सभ्यता का सर्वथा अभाव होता है किन्तु, उस परिवेश के वे निपट निरक्षर देहाती बच्चों का वाक् चातुर्य, बौद्धिक क्षमता सरल भाव से उद्दीपन की क्षमता देखकर ऐसा सोचने पर बाध्य हो जाते हैं कि "पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय"।

अन्यथा न रेडियो, न टेलिविजन, न शिक्षण संस्थाएं फिर भी उनका बौद्धिक स्तर सागर के उत्तुंग तरंगों की तरह हिलोरे लेत रहता है।

काल चक्र की गति के साथ मूल प्रक्रिया छिन्न-भिन्न होती जा रही है। शिक्षा का दबाव बाल मन पर इतना है कि शहरी वच्चों को इन सवके लिए सोचने की फुर्सत ही कहां है। पढ़ाई से यदि कुछ समय मिला तो वच्चे टेलिविजन में कार्टून के आगे नतमस्तक हो जाते हैं। बहुत हुआ तो क्रिकेट खेल लिया। हमारे छत्तीसगढ़ के अधिकांश वच्चे छत्तीसगढ़ के पारंपरिक खेलों का नाम तक नहीं जानते। वे नहीं जानते कि डांडी-पउहा किसे कहते हैं? खुडवा क्या है? फुगड़ी कैसे खेली जाती है। घानी-मूंदी, चूटिया-मूटिया क्या है? कौंड़ी कौन खेले? उनका स्थान शतरंज ने ले लिया है। शारीरिक व्यायाम के खेल इन वच्चों से नहीं होते और तव ये वच्चे विभिन्न प्रकार के व्याधि, एलर्जी के शिकार हो जाते हैं। तो क्या शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने आज बाल खेलों का पतन नहीं किया है? हम शिक्षा को दोष नहीं दे सकते। यह हमारे नैतिक और मानसिक पतन की वात है। वच्चों के लिए खेल जीवन रक्षक और जीवन दायिनी सर्वोत्तम औषधि है। इसे हमे स्वीकार करना होगा, अपनाना होगा।

यहां मुझे छत्तीसगढ़ के वाल खेल गीतों के उपर वातें कहनी है। समय सीमा सुनिश्चित है अतः मैं छत्तीसगढ़ के वाल खेलगीतों पर दो-दो लाईन में ही कहूंगी। शस्य-श्यामला, रत्नगर्भाधानी धरती छत्तीसगढ़ अंचल के वाल खेल गीत अत्यन्त समृद्ध हैं जरूरत है तो इसे संरक्षण और संवर्धन की। इसके लिए नये राज्य में सरकार प्रयत्नशील है और समय-समय पर इसके उन्नयन के लिए कार्यक्रम भी आयोजित किये जा रहे हैं और आशा है कि परम्परागत नियमों का निर्वहन करते हुए ये खेल स्कूल शिक्षा के अंतर्गत भी शामिल किये जाने चाहिए। अव वात कुछ वाल खेल गीतों की तो सवसे पहले वालिकाओं द्वारा खेली जाने वाला फुगड़ी -

1. **फुगड़ी** - गोवर दे वछरू गोवर दे, चारो खुट ला लीपन दे
चारो देरानी ला वइठन दे।

यह पूरी तरह शारीरिक व्यायाम के साथ ही प्रकृति के प्रति प्रेम सौहार्द्र की भावना, एकता पर्यावरण की शुद्धता, नारी सुलभ कोमल भावनाओं का प्रतीक, हमें अपने घर को चारों ओर से लीप पोतकर स्वच्छ रखना है, फिर खाने-पीने का निर्देश, व्रत त्यौहार, नेग-नियम, रिश्ते-नाते, संबंधों को बनाये रखने का सशक्त माध्यम वहीं

2. अटकन-बटकन - चल-चल बेटी गंगा जाबो,
गंगा ले गोदावरी जाबो
पाका-पाका बेल खाबो

यहां गंगा ओर गोदावरी प्रतीक है। हमारे नदी घाटी सभ्यता का। बच्चे खेल-खेल में ही मनोरंजक ज्ञानवर्धक बातों के साथ ही साथ इन सरिताओं के जीवन दायिनी संबंधों को भी आत्मसात कर लेते हैं, जीवन में।

3. डांडी पउहा - कुकरूस कूं, काखर कुकरा
राजा दसरथ के, का खाये
कनकी कोढ़ा

4. घानी मूंदी नागर बईला जोर दे, पानी दमोर दे
हाथी घोड़ा पालकी जै कन्हैया लाल की
इत्ता-इत्ता पानी, घोर-घोर रानी
ए गली ले जाबोन मूसर मा धमकावोन

5. खुड़वा - खुरी के आल पाल, खाले बेटा वीरापान
फिर अंत में चल कबड्डी आवन दे तवला बजावन दे।

6. चुटिया मुटिया - कहां जाथस डोकरी, महुवा वीने बर
महु ला लेगवे, तोर दाई ददा ला पूछके आ
आंगन डोकरी, चल मोला खदैया चढ़ा
हः हः हः डोकरी के मूड़ मा कौवा चिरक दिस।

7. चोर पुलिस - काखर बारी ए - राजा के, काबर आए हस - खीरा टोरेबर
अभी तो नानकुन है-मैं तो टोरहूं, दरोगा ला बताहूं
अव्वल राजा-दुव्वल दरोगा, तियल तेली - चौवल चोर

8. चिंगरीबुर-बुच्ची- ऊंगलियों को जमीन पर रखकर, दस्तों/पिंजो/काल/कबूतर/ढोल
चांटी लेबे कि चांटा

इस तरह हम देखते हैं कि ग्रामीण अंचलों में, शहर के किनारे बसे क्षेत्रों में इन बाल खेल गीतों का बहुत आनंद उठाया जाता है। साथ ही भौंरा, बांटी, गिल्ली-डंडा, लंगरची इन सभी खेलों के माध्यम से हास्य, मनोविनोद, शारीरिक श्रम, व्यायाम परक खेल, वह भी बाल सुलभ गीतों के साथ हमारी छत्तीसगढ़ की संस्कृति में विद्यमान है। जरूरत है आज इन्हें अपनाने की। इसके लिए ग्रीष्मकालीन अवकाश के समय घरों में बच्चों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ताकि हमारी संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं का समुचित संवर्धन हो सके।

शकुन्तला तरार
सेक्टर -2 एकता नगर
गुढ़ियारी, रायपुर
फोन- 2592194

छत्तीसगढ़ के व्यंजन

- डॉ. निरूपमा शर्मा

किसी भी देश या प्रदेश की लोकभाषा, लोक साहित्य और उसकी अपनी सांस्कृतिक परम्परायें उस देश या प्रदेश की पहचान होती है। छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति लोक कला और उसकी सामाजिक संरचना किसी भी क्षेत्र से पिछड़ा नहीं है। लेकी नाम के अंग्रेज ने एक माह चौदह दिन के प्रवास में छत्तीसगढ़ के लोगों को अतिथ्य परायण में सर्वश्रेष्ठ कहा जवकि अठारहवीं शताव्दी के मेजर एगन्यू ने अपराधों से दूर रहने वाले, ईमानदार, सत्यनिष्ठ, स्वच्छंद और नैतिकवान कहा।

छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति जितनी जीवंत और जानदार है उसकी तुलना तो हम करना ही नहीं चाहते क्योंकि वह हमारी अपनी विलग पहचान है। हमारा सामाजिक जीवन, हमारी धार्मिक मान्यतायें, यहाँ की लोक परम्परायें हमारी अपनी है। इसी तारतम्यता में हम छत्तीसगढ़ के खान-पान की चर्चा करेंगे जो अपना सानी नहीं रखती। यहाँ का जीवन सादा, सामान्य घरों में रहने वाले और यहाँ का मुख्य भोजन चांवल उसके व्यंजनो को विविध रूपों में स्वादिष्ट वनाकर खाने वाले हैं। चांवल के व्यंजनों की ही भोजन में प्रमुखता है, जिनका आगे हम वर्णन करेंगे। अन्य अनाजों में गेहूँ, चना, मसूर, तिवरा, लाख, उड़द मूंग, राहर, कोदो कुटकी है जिनका उपयोग भी भोजन में किया जाता है। चाहे वह नियमित हो, तीज त्यौहारों में हो या शौक से वनाये जाने वाले व्यंजनों में हो।

आदिवासी जीवन में कोदो चांवल, कुटकी, मड़िया, लांदा वासी,पसिया, जंगल के कंदमूल ही आदिम काल का प्रमुख भोजन या आहार था जो अव युग परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो चुका है। इसके सिवा जो अन्य जातियाँ या प्रजातियाँ यहाँ विभिन्न क्षेत्रों से आई यहाँ के वासी हो चुके हैं और यहाँ जीवन यापन कर रहे हैं वे कुछ तो यहाँ का वनोपज ही खाते हैं पर कुछ उपजें जौ, वाजरा, दालें, तिलहन, गन्ना, सरसों और वृहद रूपों में विकसित किया गया साग, सब्जियों की खेती से उत्पन्न वस्तुये भी यहाँ के भोजन का अंग बन चुके हैं, जिसे वे स्वयं विकसित किये।

यहाँ के सामान्य जीवन में हम प्रातः कालीन भोजन को 'कलेवा करना' कहते हैं दोपहर के और रात्रि के भोजन को 'जेवन' और 'वियारी' कहते हैं। कलेवा के रूप में हम क्या-क्या खाते हैं इसका एक मूल रूप का दर्शन है, इसमें फरा, चीला,धुसका, अंगाकर, वांटी, कोहरी, घुघरी, मुठिया, चौंसेला, गुलगुला, गुड़हा चीला, वेसन, अगास मुनगा, कोहंड़ा फूल, कोचइपत्ता, धुआंसी, कौंवाकानी, मिरचा, पोईभाजी आदि से बने भजिये का कलेवा भरते हैं, इसमें गाँव के किसान अंगाकर रोटी और वासी का कलेवा प्रमुखतः करते हैं। पर गांवों में भी आज कल 'चाय' घर-घर में अपना स्थान वना चुकी है, ये सारे व्यंजनों में अधिकांश चांवल से ही बनते हैं रात के वचे भात से भी वने होते हैं या उसे डुवा कर वासी के रूप में खाने की परंपरा है। वासी के साथ जरूरी नहीं कि साग आदि हो प्याज, हरी मिर्च नमक मही मिलाकर भी इसे खाया जाता है। यह भूख जगाने वाला हल्का और शीघ्र पचने वाला भोजन है, इसमें कोई गरिष्टता नहीं होती। इसमें अनाज के साथ इसके पेज को भी पी लिया जाता है जो पानी पीने की कमी को पूर्ण कर देता है।

दिन के भोजन में किसान खेत से लौटकर गरम वने दाल चांवल या, साग भात खाते हैं अव तो लोग रोटी भी अनिवार्य रूप से खाने लगे हैं। खेत या वाड़ी में स्वयं के द्वारा ऊपजायी हुई सब्जी, भाजी का ही उपयोग किया जाता है। इसके अलावा भोजन में स्वाद के लिए अथान्, पापड़ (चांवल से बने) दही मिर्च, विजौरी,लाईवरी आदि का उपयोग भी किया जाता है। भोजन में तसमई, रसकतरा (गन्ने और चांवल के आटे से वना) व्यंजन का उपयोग भी किया जाता है। गेहूँ का उपयोग गावों में रोटी के रूप में कम 'सोहारी' के रूप में अधिक किया जाता है। चांवल के आटे के एवं गेहूँ के आटे से बना अंगाकर बहुत स्वाद से बच्चे, बड़े सभी खाते हैं। फसल के समय तिवरा, मटर (वटुरा) मसूर, चना का 'वटकर' साग के रूप में बनाया जाता है।

छत्तीसगढ़ अंचल में भाजियों का उपयोग भोजन में सर्वदा से होता चला आ रहा है। यहाँ भाजियों के इतने प्रकार हैं कि उनकी गणना करें तो साठ सत्तर प्रकार की संख्या गिनी जा सकती है। ये सभी हरी भाजियाँ कितनी लाभदायक होती है इसे बताने की आवश्यकता नहीं है। शाम या रात्रि का भोजन जिसे हम 'वियारी' कहते हैं। इससे भी दालभात, महीभात, 'बासी' को लोग विशेष रूप से खाते हैं। गर्मियों में सुबह के चांवल को शाम में डुबोकर 'बोरे' बनाकर खाते हैं ऐसी मान्यता है कि गर्मी में यह शरीर को ठंडा बनाये रखता है। इस प्रकार 'जेवन' और 'वियारी' का भोजन भी सादा पर तत्वों से भरपूर रहता है।

व्यंजनों की विविधता हमें छत्तीसगढ़ के तीज त्यौहारों धार्मिक पर्वो में देखने को मिलता है। इसे 'रोटीपीठा' कहते हैं। इन व्यंजनों में भी चांवल का ही प्रमुखता होती है। गेहूँ, चना आदि अन्नों से भी विविध प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं। तीजा जो महिलाओं के सौभाग्य का पर्व है बहू-बेटियाँ दिन भर के उपवास के बाद बने हुये व्यंजनों पकवानों को 'महादेव' पार्वती की पूजा कर भोग लगाते हैं और प्रात 'विनसा' (दूध को फटाकर बना हुआ पेय) को पीकर व्रत को छोड़ते हैं। पूजा पाठ की सामग्री विसर्जित करके फिर भोजन करती हैं। इस पर्व में ठेटरी, खुर्मी, सोहारी, बरा मुख्य व्यंजन बनाते हैं। बहू-बेटियाँ सभी रिश्ते नातों में जाकर इसी तरह के व्यजनों को खाती और खिलाती हैं।

'होली' में मुख्य रूप से 'अइरसा' देहरौरी, सोहारी, गुलगुला, भजिया सेव गार के बनाते हैं, 'दही बरा' 'मही बरा' भी बनाकर रखते हैं क्योंकि गर्मी में यह व्यंजन सुपाच्य होता है एवं शरीर को शीतल रखता है।

दीपावली त्यौहार तो पूरे भारतवर्ष का त्यौहार है। इसके लक्ष्मीपूजा के लिए विभिन्न प्रकार के रोटी पीठा, पकवान बनाये जाते हैं। चूंकि छत्तीसगढ़ ही नहीं पूरे भारत वर्ष में सबसे लंबा 6 दिनों तक मनाया जाने वाला सबसे बड़ा पर्व है इस लिए इसमें प्रति दिन अलग अलग व्यंजन बनाये जाते हैं। छत्तीसगढ़ अंचल में यह धनतेरस से प्रारंभ होता है। यम द्वितीया में यमराज देवता से जीवन वृद्धि की कामना की जाती है। सुख समृद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है। इस दिन सोहारी, हलुवा का भोग लगाकर पूजा की जाती है। द्वार पर तेरह दीपक जलाये जाते हैं। दूसरे पकवान भी बनाये जाते हैं। 'नरक चौदस' में अश्विनी कुमार की पूजा की जाती है। सोंहारी खीर बड़ा आदि बनाकर पूजा कर शाम में 14 मिट्टी की दीप जलाये जाते हैं। तीसरे दिन लक्ष्मीजी की पूजा की जाती है और सोहारी, बरा, भजिया, पिड़िया, देहरौरी, छीट लड्डू, बूंदी लड्डू, तसमई हलुवा, दूधफरा आदि बनाकर भोग लगाते हैं। चौथे दिन 'गोवर्धन' पूजा होती है जिसमें गाय को मौसमी फलों, सब्जियों और जंगल से लाई जड़ी बूटी मिलाकर चांवल की खिचड़ी बनाई जाती है जिसे गोवर्धन की पूजा के समय गाय को खिलाया जाता है। पांचवे दिन 'अन्नकूट' का पर्व रहता है, जिसके मंदिरों में भगवान को छप्पन भोग चढ़ाया जाता है। देवी देवताओं की प्रसादी से प्रारंभ करके पशुपक्षी तक के लिए भोजन बनाते हैं और साथी, मित्र, मेहमान सभी को भोजन कराते हैं। छटवें दिन 'भैया दूज' का पर्व मनाते हैं। भाई की आयु वृद्धि की कामना में भाई की पूजा कर उसे सोहारी, खीर, बड़ा, पिड़िया, देहरौरी, नमकीन आदि खिलाते हैं।

इसी प्रकार के और भी पर्व 'नवाखाई' नया अनाज या फसल आने पर, पूर्णिमा के दिन कई प्रकार के व्यंजन बनाकर देवताओं को भोग लगाकर प्रसादी बांटकर परिवार के लोगों को खिलाया पिलाया जाता है।

इन पकवानों के अतिरिक्त गर्मियों में सब्जी भाजी नहीं मिलने के कारण जाड़े में सब्जियों को सुखाकर 'खोइला' बनाया जाता है। गर्मी में इन्ही सूखी सब्जियों को बनाकर काम चलाया जाता है। भिंडी, चुटचुटिया, मिर्ची, फूल गोभी, पत्ता गोभी, भटा, टमाटर, चना भाजी, तिवरा भाजी, कुंवरू, करेला, कुसुम भाजी, अमारी भाजी, जिमीकांदा आदि का खोइला किया जाता है। कुम्हड़ा, रखिया, कन्सुइया, मुनगा,भुरई आदि के साथ पपीता, तूमा की बड़ी बनाते हैं, मिर्ची को दही में डुबाकर सुखाते हैं। चांवल का पापड़ भी गर्मी में भोजन के साथ उपयोग में लाया जाता है। आम, नीबू का अचार, कटवा भरवा बनाते है, जिमीकांदा, आंवला, करौंदा, मिर्ची महुवा का अचार भी बनाकर वर्ष भर के लिए रखा जाता है। इमली फूल, कुर्मा, का खोइला करते है जिससे गर्मी में 'कढ़ही' बनाते हैं।

छत्तीसगढ़ को धान का कटोरा कहा जाता है। यहाँ का प्रमुख धंधा कृषि है, गांवों में ही अधिकतर लोग रहते हैं इसलिये खान-पान का आकलन हम गाँव के जन-जीवन में ही करें तो हमें उनके भोजन में सादगी पर विविधता के दर्शन होते हैं। भोजन के साथ यहाँ 'चटनी' 'चिखना' का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। चटनी भी यहाँ कई प्रकार की बनाई जाती है। आम, इमली, कुर्मा, प्याज, लहसून मिर्ची, अमारी भाजी, तरोई के छिलके, टमाटर, करौंदा, आंवला की चटनी विविध प्रकार से बनाई जाती है जो केवल नमक, मिर्च, लहसून के मिश्रण से ही तैयार हो जाता है। इस प्रकार छत्तीसगढ़ के खान-पान की चर्चा करें तो इसकी विविधता की समानता ही नहीं है। इसमें न तो अधिक मसालों की और न ही अधिक खर्च की आवश्यकता होती है। जो चीजें खान-पान से उपयोग में लाई जाती है वह बड़ी सहजता से सर्वत्र उपलब्ध हो जाते हैं। गर्मी के दिनों में 'खोइला' 'सुक्सा' आमा खोइला, बोइर खोइला, इमली आदि से विविध सब्जियों के सूखे रूप से इसकी पूर्ति हो जाती है। अंत में विशेष ध्यान देने की बात है कि छत्तीसगढ़ में महिलाएं बहुत ही परिश्रमी, मेहनती होती हैं, इसलिये सामग्री की उपलब्धता रहने पर वह एकाग्र होकर अनाज, वनस्पति, सब्जियों, फलों का उपयोग बहुत होशियारी से खान-पान में कर लेती है।

छत्तीसगढ़ में एक विषय की चर्चा किये बिना खान-पान की चर्चा अधूरी होगी। जचकी के समय यहाँ बत्तीस जड़ी बूटियों से बनाया जाने वाला लड्डू विशेष महत्वपूर्ण है। यहाँ की महिलायें इस अवधि में इस लड्डू को खाकर कांके पानी (कांके लकड़ी से तैयार पेय) को पीती है। यही इनके शरीर को शीघ्र पुष्ट और बलवती बनाती है। भोजन में सोंठ पीपर का 'बुकनू' घी के साथ प्रथम ग्रासों में खाना शरीर के पानी को शीघ्र सुखाता है। इस प्रकार यह लड्डू इस समय का मुख्य औषधि और उपचार होता है। जो बड़ी और महंगी दवाओ से अधिक असरदार होती है। इन पारम्परिक व्यंजनों के अलावा यहाँ आज विभिन्न अंचलों से लोग आकर बस गये हैं जीवन यापन कर रहे हैं। उनमें महाराष्ट्र का पोहा, श्रीखंड, गुजरात का ढोकला, खांडवी, मद्रास दक्षिण भारत का दोसा, इडली, पंजाब का मक्का,बाजरे की रोटी सरसों का साग और पाश्चात्य देशों से आयात विविध व्यंजन खान-पान में शामिल हो गये हैं, परन्तु इस अंचल के पारम्परिक भोजन, यहाँ के रोटी, पीठा, कलेवा के मुख्य भोजन की सुपाच्यता, पौष्टिकता, सस्तापन और स्वादिष्टता की बराबरी कर पाना असंभव है। जो संतुष्टि आनंद हमें इन पारम्परिक भोजन में मिलता है वह और दूसरे भोजन में नहीं मिल पाता। पैसों की मार तो झेलनी ही पड़ती है।

हमर छत्तीसगढ़ के खान-पान के कोनो सानी-बानी नइये। इंहा के परंपरागत खानपान म कलेवा (नास्ता), जेवन (भोजन) अऊ बियारी रात के भोजन अऊ अलग-अलग तीज त्यौहार म बने रोटी पीठा के अलगे सेवाद अऊ मजा हवै।

(अ) कलेवा -

क्र.	पदार्थ का नाम	सामग्री जिससे बनाई जाती है।	क्र	पदार्थ का नाम	सामग्री जिससे बनाई जाती है।
01	फरा	चांवल	09	मुटिया	चांवल
02	चीला	चांवल	10	चौसेला	चांवल
03	घुसका	चांवल	11	गुलगुला	गुड़+शक्कर
04	अंगाकर	चांवल	12	गुड़हा चीला	गेंहू+शक्कर +
05	बाटी	गहूं+चांवल	13	अगास फूल-भजिया	
06	कोहरी	गुड़+दूध+गहूं	14	कोचई पत्ता भजिया	
07	घुघरी	समूरी+मूंग	15	कोहड़ा फूल भजिया	
08	बासी	रात किन के भिगाये चांवल + पानी (बासा)	16	बेसन के भजिया	

(ब) दिन अऊ रात के जेवन

01	दार	08 रोटी	15	भुंजवा	22 जिमी कांदा
02	भात	09 चॉवल	16	खोईला	23 कुंदरू
03	मौसमी साग	10 पापर	17	चुरचुटिया	
04	चिखना	11 बरी	18	करेला	
05	अथार	12 पूरन लड्डू	19	रमकेरिया	
06	सोहारी	13 लाईबरी	20	कुहड़ा	
07	बरा	14 दही मिर्ची	21	लउकी	

(स) छत्तीसगढ़ के तीज त्यौहार के रोटी-पीठा

01	पिड़िया	09 तिली लड्डू	17	सलोनी	25 दूध फरा
02	खाजा	10 करी लड्डू	18	वरा	26 खिरसा
03	पपची	11 छींट लड्डू	19	जलेवी	27 बिनसा
04	बबरा	12 पूरन लड्डू	20	बिरिया	28 पना
05	अईरसा	13 दहरौली (खोखमा के, चॉवल के, कोचई के)	21	सकरपारा	29. मीठ पना (पका आम)
06	ठेठरी	14 लपसी	22	सोंहारी	30 अमरसा (पका आम)
07	खुरमी	15 गुराम	23	बूंदी	31 अमली पना
08	कसार लड्डू	16 कुसरी	24	झेलनाहीं सोहांरी	

(द) चटनी

01	आमा चटनी	05	पताल खोईला चटनी	09 अमारी के फूल के चटनी
02	अमली चटनी (कच्चा पक्का दूनो)	06	पताल कच्चा के चटनी	10 मिर्चा लसून की चटनी
03	कुरमा फूल के चटनी	07	गोंदली के चटनी	11 तली के चटनी
04	तरोई फोकला चटनी	08	अमारी भाजी के चटनी	

(इ) खोईला

01	आमा खोईला	07	गंवार फल्ली खोईला	13. तिवरा भाजी के खोईला
02	अमली खोईला	08	चुटचुटिया खोईला	14 कुसुम भाजी के खोईला
03	पताल खोईला	09	पत्ता गोभी के खोईला	15 कुरमा फूल के खोईला
04	रमकेरिया खोईला	10	फूल गोभी के खोईला	16 जिमी कांदा के खोईला
05	भाटा खोईला	11	कुंदरू खोईला	17 अमारी भाजी के खोईला
06	करेला खोईला	12	चना भाजी के खोईला	18 चना-तिवरा के सुकसा भाजी

(ई) अथान

01	आमा अथान	05	आमा कटवा अथान	09 जिमी कांदा अथान
02	आमा नूनचरा अथान	06	महुआ अथान	10 करौंदा अथान
03	लिमऊ-मिर्चा अथान	07	आमा तेलहा अथान	
04	आमा भरवा अथान	08	लिमऊ अथान	

ये संकलन स्थानीय रूप में प्राप्त जानकारी पर तियार करे गेहे. गलती होंही तो क्षमा करहूं अऊ ओला दुरूस्त करे बर हमला जानकारी देहु तो हमर जोहार

डॉ. (श्रीमती) निरूपमा शर्मा
मुरली मनोहर मंदिर के पास,
पुरानी बस्ती, रायपुर

छत्तीसगढ़ के पकवान

- डॉ. रत्नावली सिंह

शस्य श्यामला छत्तीसगढ़ पर प्रकृति का वरद हस्त रहा है। इसे प्रचुर खनिज संपदा, जल संपदा, वन संपदा एवं जन संपदा से संपन्न बनाया है। ऋतुएं इसे नये-नये रंगों से सजाती है। वसंत में वन प्रदेश टेसू के सिन्दूरी फूलों से दहक उठता है। आम्र मंजरियों के सौरभ से वातावरण चमक उठता है, तो कोयल कूक उठती है। अलसी और सरसों के नीले-पीले फूलों का आंचल हवा में लहराने लगता है। ग्रीष्म के ताप से जब नदियों की काया सिकुड़ जाती है,जड़ चेतन त्राहि-त्राहि करने लगते हैं, तब वनों में साल, सागौन, महुआ, पीपल, तेंदू के सघन वृक्ष धरती की तपती काया को शीतलता देते प्रतीत होते हैं। वर्षा में जब खेतों में धान के बिरवे लहलहाते हैं, तो धरती हरित बसंत से सज कर कल-कल, छल-छल करती जल धाराओं का रजत हार पहन आनंदित होती है, तब सबका मन जुड़ जाता है। शीत ऋतु की ठिठुरती भोर में गुनगुनी धूप में दूर्वा पर पड़े ओस कण मोती से चमक उठते हैं। धान की सुनहली बालियॉ कृषक मन को आनंद विभोर करती हैं।

यद्यपि आज कितने ही छोटे-बड़े उद्योग लग रहे हैं पर यहां के भोले-भाले लोगों का व्यवसाय है-कृषि। अनेक प्रकार के उत्कृष्ट प्रजाति के धान छत्तीसगढ़ के 'धान के कटोरा' नाम को सार्थक करते हैं, यद्यपि गेहू, दालें और तिलहनों का भी उत्पादन होता है, तथापि मुख्य उपज धान है। लोगों का मुख्य भोजन चावल है, यद्यपि चावल की अपेक्षा सस्ता होने के कारण आजकल गेहूं भी यहां के निवासियों के भोजन का हिस्सा बन गया है। सामान्य तया दोनों समय भात, मिले तो दाल और कई प्रकार के शाक यहां के लोगों का मुख्य भोजन है। नदी-तालाब में पाई जाने वाली मछलियॉ भी शौक से खाई जाती हैं। पहले रात के समय बचे भात में पानी डालकर, सवेरे बासी खाने का रिवाज था। खमनीकरण के कारण बासी में ऐसे तत्वों का समावेश होता था, जिससे लोग बहुत काम कर सकते थे पर अब बासी का स्थान धीरे-धीरे चाय ने ले लिया है। सवेरे नाश्ते में धुसका एवं अंगाकर खाया जाता है। धुसका चांवल के आटे से बनता है। आटे में नमक डाल कर गीला सा गूंधते हैं। तवा को गरम कर, तेल लगा कर उसमें आटा फैला देते हैं और तवे को ढक देते हैं। कुछ मिनट बाद धुसका को उलट कर दूसरी तरफ को तेल डाल कर सेंकते हैं। घी एवं चटनी, आचार के साथ खाते हैं। अंगाकर बहुत ही कम बनता है क्योंकि इसे बनाने के लिये कंडे की आग की आवश्यकता होती है। शहर में तो अब रसाई गैस या स्टोव से बनती है। गॉव में भी चूल्हे का प्रयोग तो होता है पर जिस 'गोरसी' (मिट्टी से बना आग रखने का पात्र) में परंपरागत अंगाकर बनता था, वह अब बहुत कम देखने में आता है। चूल्हा-गोरसी बनाने वालों की कमी गॉवो में भी हो गई है, और कंडा भी इफरात से नहीं मिलता। अंगाकर चावल के आटे से बनाते हैं। पहले गोरसी में कंडे सुलगा दिये जाते हैं। चावल के आटा को नमक डालकर गूंधते हैं। पत्तरी (पत्तल) में तेल लगा कर गुंधे आटे की मोटी परत फैला कर,उपर से पतरी रख सुलगे कंडों के ऊपर रखा जाता है। ऊपर भी सुलगते कंडे रखते हैं। कंडों की आंच में धीरे-धीरे अंगाकर पकता है। एक तरफ पकने पर उसे उलट देते हैं। दोनों तरफ सिंक जाने पर आग से निकाल कर, राख आदि झाड़ कर घीमा सरसों तेल तथा आचार-चटनी के साथ खाते हैं। खाने में स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं हल्का होता है। चावल के आटे की जगह गेंहूं के आटे का भी प्रयोग होता है। यह तो है रोज के खाने-पीने का ढंग। छत्तीसगढ़ी खाने में अधिक घी-तेल का उपयोग नहीं होता इसलिये यहां के लोगों में मोटापा बहुत कम पाया जाता है।

छत्तीसगढ़ के अधिकांश त्यौहार कृषि आधारित होते हैं। सावन की अमावस्या, हरेली से त्यौहारों का सिलसिला शुरू होता है। फिर तो राखी-भोजली, तीजा-पोरा, पितर-नेवरात जैसे पर्व आते हैं। गॉव की रक्षा और खुशहाली के लिये बैगा हूंम धूप देते हैं, गाय कोठा में नीम की डाल खोंचते हैं। घरों में बरा चौंसेला बनता है जिसे परिवार एवं कमिया तथा कृषि सहायकों को प्रेम से खिलाया जाता है।

यूं तो हर प्रदेश में अपने उत्पादन के अनुसार अलग-अलग पकवान वनते हैं जैसे छोले-भटूरे, इडली-दोसा, ढोकला-खेपला, समोसा-कचौरी-मालपुआ, पोहा-थालीपीठ, रसगुल्ला आदि। छत्तीसगढ़ के अधिकांश पकवानों मे चांवल का प्रयोग होता है। धुसका-अंगाकर, चीला-चौंसेला, फरा-अइरसा, देहरौरी केवल चांवल से ही बनते हैं। खुरमी-पपची में गेहूँ एवं चावल के आटे का उपयोग होता है। ठेठरी, करी, वूंदी, बेसन से वनते हैं। भोजों में बरा-सोंहारी (पूरी) तसमई (खीर) वनाई जाती है। छत्तीसगढ़ में महिलाओं के तीन मुख्य व्रत हैं-तीजा, बेहवा जूंतिया और भाई जूंतिया। इन व्रतों में चीला-विनसा का फरहार वनता है, जिसे सवको खिलाया जाता है। इस प्रकार चीला को यहां का प्रमुख पकवान कहा जा सकता है। इसे छत्तीसगढ़ी दोसा कह सकते हैं।

<u>चीला</u> :- यह तीन प्रकार से बनाया जाता है-सादा चीला, नूनहा चीला (नमकीन) तथा गुरहा चीला (मीठा)। चीला बनाने के लिये चावल रात में भिगाया जाता है। सवेरे पानी निकाल छाया में सुखाते हैं। फिर ढेकी या जांता में पीसकर आटा बनाया जाता है, जिसे सांट कहते हैं। सांट में पानी डाल घोल वनाते हैं। घोल जितना पतला रहता है, चीला भी उसी अनुपात से पतला होता है। वड़े-मोटे तवे को चूल्हे में रख गरम करते हैं। कपड़ा या रूई को तेल में डुवा, तवे में घुमाते हैं। तेल लगे तवे पर सांट के घोल को कलछी से पतला फैलाते हैं। फिर उसे ढक देते हैं। कुछ देर वाद ढक्कन निकाल चीला को पलट कर सेंकते हैं। दोनों तरफ सिंक जाने पर चीला को थाली में उतार दूसरा चीला डाला जाता है।

<u>नूनहा चीला</u> :- चीले के घोल में नमक डालने से नूनहा चीला बनता है।

<u>गुरहा चीला</u> :- सांट को गुड़ पानी में घोल कर गुरहा चीला बनाया जाता है।

<u>बबरा</u> :- गुड़ को पानी में घोल कर गाढ़ा घोल बनाते हैं। इसमें चावल या गेहूँ के आटा को घोल कर चम्मच से गरम तेल में डालते हैं। दोनों तरफ से तल कर निकाल लेते हैं। मातृ नवमी के दिन वबर अवश्य बनाया जाता है।

<u>बिनसा</u> :- बहुत कुछ पनीर की तरह बनता है। दूध को चूल्हे में गरम करते हैं। उबाल आने पर खट्टा दही डालते हैं, जिससे दूध फट जाता है। अब स्वाद के अनुसार गुड़ या शक्कर डाल कर कुछ देर पकाते हैं। इस प्रकार बना बिनसा चीला या पूरी के साथ खाया जाता है।

<u>चौंसेला</u> :- गरम पानी में सांट को गूंधते हैं। कभी नमक डाल दिया जाता है, कभी बिना नमक के ही गूंध कर छोटी-छोटी लोई बनाते हैं। हथेली में तेल लगा लोई को फैलाया जाता है। आकार मे पूरी से छोटी किन्तु कुछ मोटी होती है। फिर गरम तेल में छानते हैं। छोटे आकार के कारण एक साथ कई चौंसेले छन जाते हैं। इसे पूरी का सबस्टीट्यूड कहा जा सकता है। हरेली, पोरा, छेरछेरा में विशेष रूप से बनता है। इसे गुड़ या अचार के साथ खाते है।

फरा :- फरा दो प्रकार से बनाते हैं। गॉव में जब गन्ने की पेराई होती है, तब ताजे रस को गरम करने के लिये रखा जाता है। चावल के आटे को गरम पानी से गूंथ कर हथेलियों से पतली बाती के समान बनाकर रखते हैं। उबलते रस में फरा को डाल कर पकाते हैं। पक जाने पर इलायची डालते हैं। गन्ने का रस न रहने पर गुड़ के घोल से भी फरा बनता है। खाने में यह स्वादिष्ट होता है। नूनहा फरा बनाते समय आटा में नमक डाल कर गूंथते हैं। फिर हथेली से छोटी लोइ को बर कर फरा बना कर रखते हैं। भगोने में पानी उबलने रखते हैं। उस पर चलनी रखते हैं। उबलने पर चलनी में फरा रख कर ढक देते हैं। 10 मिनट वाद फरा भाप से पक जाता है। एक कड़ाही में तेल डाल कर सरसों और मिर्च का बघार लगा फरा पर डाल दिया जाता है। अब फरा खाने के लिये तैयार होता है।

अइरसा :- छत्तीसगढ़ी पकवानों में सबसे स्वादिष्ट तथा बनाने में सबसे कठिन है। गुड़ की चाश्नी बनाते हैं। इसे गरम-गरम ही सांट में डालकर गूंधते हैं। मुलायम होने पर छोटी-छोटी लोई तोड़ हथेलियों से फैलाते हैं। छोटी पूरी के आकार का होने पर तिल के ऊपर रखते हैं, जिससे एक तरफ तिल चिपक जाता है। फिर उसे तेल में तलते हैं। यद्यपि गुड़ की चाश्नी का सही पाग बनाना कठिन है, और गरम चाश्नी मे गूंधना भी कठिन है, पर बनने पर यह बेहद स्वादिष्ट होता है।

देहरौरी :- यह नायाव छत्तीसगढ़ी पकवान है, जिसे बनाने में दक्षता अपेक्षित है। इसके लिये चावल को भिगा कर छाया में सुखाया जाता है। फिर ढेंकी में या जाता में दरदरा पीसा जाता है, जिसे दर्रा कहते हैं। दर्रा में घी का मोयन डालकर दही से गूंधते हैं। छोटी लोई तोड़ हथेलियों में रख बरा के समान बना कर तेल में तलते हैं। अव शक्कर या गुड़ की दो तार की चाश्नी बना तले देहरौरी को चाश्नी में डुबाते हैं। दूसरे दिन तक देहरौरी में रस अच्छी तरह भिद जाता है। गुड़ का देहरौरी अधिक स्वादिष्ट होता है।

चावल एवं गेहूँ के आटे के मिश्रण से बनने वाले पकवानों में मुख्य है खुरमी और पपची। तीजा, गवन-पटौनी, साध-सधौरी एवं शादी व्याह में बनाये जाते हैं।

खुरमी :- तीन भाग गेहूँ आटा तथा एक भाग चावल के मोटे पिसे आटे के मिश्रण में घी का मोयन किया जाता है। गुड़ का गाढ़ा घोल बनाते हैं। आटा में चिरौंजी, सूखे नारियल के टुकड़े एवं मूंगफली दाना डालकर कड़ा गूंथते हैं। छोटी लोई बनाकर हाथ की मुट्ठियों में दबाते हैं। कई लोग लोई को टोकनी से भी दबाते हैं। फिर इन्हें गरम किये तेल में मंद आंच में पकाते हैं। अच्छी तरह तल जाने पर कड़ाही से निकालते हैं, इस तरह खुरमी तैयार हो जाती है। आज कल तो शक्कर या गुड़ में गुंधे आटा को बेल कर चौकोन काट कर तल लेते हैं।

पपची :- वढ़िया पपची स्वाद में वालूशाही को भी मात करती है। पपची बनाने में दक्षता आवश्यक है। तीन भाग गेहूँ में एक भाग चावल के आटे के मिश्रण में घी का मोयन डालकर खूब कड़ा आटा गूंथा जाता है। छोटी-छोटी लोई वना पटे से दवा कर गोल, चपटा आकार दिया जाता है। तेल को गरम कर कुछ ठंडा करते हैं। इसमें पपचियां डालकर मंद आंच में तलते हैं। गुड़ या शक्कर की दो तार की चाश्नी बनाते हैं। चाश्नी की झारे से फेंट कर पपची लपेट कर अलग करते हैं। कुछ देर में चाश्नी सूख जाती है। अधिक मोयन और मंद आंच में सिंकने के कारण यह कुरमुरा और स्वादिष्ट होती है। शक्कर की अपेक्षा गुड़ से पागने में अधिक स्वाद आता है। शादी-व्याह, गवन-पठौनी में बहुत बड़ी पपचियां बनती हैं।

कुसली :- गुझिया ही छत्तीसगढ़ में कुसली कहलाता है। आटा या मैदा में मोयन डालकर गूंधते हैं। खोया को भूनते हैं। उसमें थोड़ी भुनी हुई सूजी, किसा सूखा नारियल, चिरौंजी और पिसी शक्कर मिलाते हैं। खोया न मिलने पर कई लोग आटा को भून कर उसी का भरावन बनाते हैं। बीच में भरावन रख कर दोनों ओर से चिपका कर कटर से काट लेते हैं। पहले तो हाथ से ही बेहद सुन्दर गुझिया बनाई जाती थी। अब तो गुझिया मेकर भी आ गया है। फिर घी या तेल से तलते हैं। इस प्रकार स्वादिष्ट कुसली तैयार होती है।

बेसन से बनने वाले पकवानों में ठेठरी, करी, बूंदी मुख्य है।

ठेठरी :- बेसन में स्वादानुसार नमक और अजवाइन डाल तेल का मोयन देते हैं। पानी से बेसन को गूंध कर छोटी लोई वना, पटे पर रख हथेली से घुमा कर वत्ती के समान बनाते हैं। फिर इसे इच्छानुसार गोल या लंबी आकृति में वना कर तेल में पकाते-छानते हैं।

करी :- वेसन का मोटा सेव है। नमक डाल कर नमकीन करी बनाते हैं, तथा बिना नमक के करी से लड्डू वनाते हैं। दुख-सुख के अवसरों में करी के गुरहा लड्डू बनाये जाते हैं।

बूंदी :- बेसन को फेंट कर पतला घोल बना कर झोर से वूंदी छानते हैं। वूंदी को शक्कर में पाग कर खाते हं। इसका लड्डू भी बनाते हैं। रायता और कढ़ी के लिये भी बूंदी वनाई जाती है।

सोंहारी :- पतली और बड़ी पूरी को सोंहारी कहते हैं। शादी-व्याह और भोज में सोंहारी वनाने का रिवाज है।

बरा :- हिन्दी में बड़ा कहते हैं जो उड़द दाल से वनता है। छिलके वाली उड़द दाल को भिगा कर धोते हैं। छिलका निकाल पीसते हैं। नमक, हरी मिर्च, कटा अदरक डालकर, पीढ़ी फेंटते हैं। फिर लोई वना हथेली में गोल बना कर तेल में तलते हैं। शादी-व्याह तथा पितर में बड़े अवश्य वनते हैं। वरा को गरम पानी में डालकर निकालते हैं, फिर दही में डालकर दही बरा वनाते है।

भजिया :- उड़द की पीठी को नमक ढालकर खूब फेंटते हैं। फिर पकौड़ी जैसे तल कर मठा में डुवाते हैं। मठा में नमक डालते हैं तथा सरसों और जीरा से बघारते हैं। पत्तल में परोसने का आवश्यक आइटम है।

तसमई :- खीर को छत्तीसगढ़ी में तसमई कहते हैं। दूध में चावल डालकर पकाते हैं। दूध के गाढ़ा होते तक चावल पक जाता है तथा इसमें शक्कर डालकर फिर पकाते हैं। पक जाने पर पिसी इलायची, किशमिश, काजू तथा किसा नारियल डालते हैं। हर भोज में तसमई अवश्य परोसी जाती है।

यूं तो ये ही छत्तीसगढ़ के प्रमुख पकवान हैं पर अब वो छत्तीसगढ़ी भी पराठे का नाश्ता करते हैं। कभी पोहे का भी नाश्ता बनता है। इडली-दोसा, छोले-भटूरे बनाने में भी निपुण हो गये हैं। इस तरह कहा जा सकता है कि कोई पकवान अब किसी प्रदेश तक ही सीमित नहीं है। अब तो सब प्रकार के पकवान सभी लोग बनाने लगे हैं, पर उनकी खासियत जरूर प्रदेश विशेष से जुड़ी होती है।

डॉ. रत्नावली सिंह
बैरिस्टर बंगला, गांधी पुतला,
बिलासपुर 495001
फोन- 07752-223580

छत्तीसगढ़ के पारम्परिक व्यंजन

- रसिक बिहारी अवधिया

जी..हां, स्वाद की भी अपनी अलग दुनियाँ होती है, स्वाद की दुनियाँ में यदि हम कहें कि फलाँ देश का है, फलाँ स्वाद फलाँ संस्कृति की देन है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि यह सौ फीसदी सही बात है। दुनियाँ के लाखों तबके के लोग अलग-अलग स्वाद की दुनियाँ में जीते हैं और उनके बीच प्रचलित स्वाद से भी उनकी अपनी पहचान होती है।

छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण से पूर्व इसी पहचान की आस लिए अपनी मातुश्री की देखरेख में जगार-98 से अब तक अपने परिवार मंडली के साथ इस छत्तीसगढ़ की लोक परम्परा में प्रचलित सौंधे - मीठे स्वादों के सहज संसार को विनम्रता पूर्वक सहेजकर आम लोगों के बीच लाने का भगीरथ-प्रयास में लगा हुआ हूँ। इस दौरान किसी ने कहा, भाई आप कहते हैं, कि खान-पान से भी यहाँ की संस्कृति उजाकर होती है, तो फिर नया राज्य बने, आज चार वर्ष होने को है, आपके इन व्यंजनों का अब तक बाजार लग जाना चाहिए। हमने कहा आपका कहना लाजिमी है, धर में हमेशा बनने वाली चीजों को बाहर आने में समय तो लगेगा ही, साथ ही साथ हम सब छत्तीसगढ़ के वासिंदां में एक मानसिकता विकसित करनी होगी कि, हम अपने खान-पान व स्वाद को इस प्रकार से प्रस्तुत करें कि लोग उन स्वादों की ओर लालायित हों, व मौका मिलते ही इस प्रकार के व्यंजनों के स्वाद का आनंद लेने टूट पड़ें। ऐसा कर पाने में हम कुछ हद तक सफल हैं, ऐसा जान पड़ता है। जहाँ तक बाजार का प्रश्न है, इसके लिए हमें दो तरह के प्रयास करने होंगे एक तो छत्तीसगढ़ के विशाल वनांचलों से लेकर गाँव व शहरों में पारंपरिक व्यंजन एवं भोजन (सामिष व निरामिष) दोनों प्रकार के स्वादों पर आधारित 'लोक स्वाद' के नाम से लगातार 'व्यंजन मेला' का आयोजन किया जाना चाहिए जो कि इस दिशा में प्रोत्साहन का बड़ा मंच बनेगा ऐसा मेरा मानना है। दूसरा देशी एवं विदेशी सैलानियों का संपर्क किसी भी राज्य के पर्यटन अमला से होता है, मेरा विनम्र निवेदन है कि राज्य पर्यटन, होटल-मोटलों के माध्यम से इन अनोखे स्वाद के व्यंजनों को परोसकर सैलानियों का अवश्य सत्कार कराये जिससे वे देश के अन्य राज्यों यथा राजस्थान व केरल आदि की भांति, हृदय स्थली पर बसे इस प्राकृतिक सौन्दर्य वाले देश के इस छोटे से राज्य में खान-पान का भी भरपूर आनंद लें । तब वो दिन दूर नहीं जब छत्तीसगढ़ी व्यंजनों का बाजार, हाईटेक व सेल फोन के जमाने के इन तथाकथित फास्ट फूडों को पछाड़ता चांवल के चीलों की छनक व फरा-पिठिया की महक बिखेरता स्वाद की दुनियाँ में अग्रसर होगा।

रसिक बिहारी अवधिया
अवधियापारा, कंकालीपारा वार्ड,
रायपुर, फोन - 2544425

छत्तीसगढ़ की संत परंपरा

- डॉ. सत्यभामा आड़िल

संत - छत्तीसगढ़ की जनपदीय संस्कृति में 'संत-भावना', मानवता और लोक-कल्याण के उच्च सोपानों को स्पर्श करती है। संत, जीवन की उज्जवल चेतना के प्रतिनिधि होते हैं। संतों ने सत्य, क्षमा, दया, त्याग, विश्वबंधुत्व, विनय, समता, समदृष्टि, करनी और कथनी, संतोप, दीनता आदि सामाजिक विश्वासों के द्वारा समाज को समुन्नत बनाने का प्रयास किया। किसी भी देश व साहित्य में संतों का आविर्भाव, वहां की धरती की 'थाती' के रूप में होता है। मोक्ष व आध्यात्मिक शांति का पाथेय बनकर ये जीवन्मुक्त हो जाते हैं। जिन संतों की वाणी मानव हृदय को अज्ञानरूपी अंधकार और पतित परिस्थिति से उठाकर ज्ञान का प्रकाश बिखेरती है - उन संतों के लक्षण क्या हैं? उनका तात्विक स्वरूप क्या है?

'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'। स्वानुभूति एवं आत्मदर्शन व आत्म साक्षात्कार का अनुभव ही संतों का जीवन दर्शन है।

'संत' - धर्म व दर्शन के व्यावहारिक रूप का नाम है।

'संत' - सत्-चित्-आनंद की सहज प्रतिष्ठा का नाम है।

'संत' - सदा युगवाणी के वाहक, युग प्रवर्तक एवं जनमानस की पीड़ा के उद्घोषक होते हैं।

संत परम्परा - हिन्दी साहित्य में संतों की परंपरा संत 'कबीर' से कई वर्षों पूर्व आरंभ हुई । पथप्रदर्शक संत के रूप में 'जयदेव' का नाम लिया जा सकता है। जयदेव, नामदेव, ज्ञानदेव, सघना, लालदेव, वेणी, त्रिलोचन - ये सब संत धर्मदास के पूर्ववर्ती संत हैं। रामानंद, कबीर, सेननाई, पीपाजी, रैदास, कमाल, धन्ना भगत, संत धर्मदास के समकालीन संत हैं। छत्तीसगढ़ में संत परंपरा, धनी धर्मदास के आविर्भाव से पुष्ट हुई।

हिन्दी साहित्य में संत काव्य का समय 1250 ईस्वी के लगभग आरंभ होता है। विद्यापति की कविता में संत विचारधारा की झलक इस मत को पुष्ट करती है। कबीर का समय 1455 संवत् से 1575 संवत् तक आया है। संत धर्मदास इनके समकालीन थे। इनका भी समय 1452 संवत से 1569 संवत् तक आता है।

संत परंपरा एक विशिष्ट विचारधारा की श्रृंखला है, जिसमें आने वाले प्रत्येक संत, क्रमशः कड़ी के रूप में जुड़ते गए। छत्तीसगढ़ में संत धर्मदास और संत घासीदास भी उसी श्रृंखला में जुड़कर 'संत की श्रेणी में आ गए।

'संत' को अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। भगत, भक्त, स्थितप्रज्ञ, जीवन्मृत, जीवन्मुक्त, परमहंस आदि ये सब एक ही तत्व के विभिन्न नाम हैं। यह तत्व शास्त्रों में ही नहीं वरन् व्यावहारिक जीवन की साधना में निहित है। संत कबीर एवं उनके समकालीन संतों ने वेद और उपनिषद की वाणी को व्यवहार एवं अनुभूति की शिला पर बैठाया है।

मध्ययुगीन संत विचारधारा 'समन्वय' की धारा थी। भारतीय इतिहास के आदिकाल से यह धारा प्रवाहित होती आई है, पर समयचक्र, परिस्थितियों एवं देशकाल पात्र के अनुसार, इसमें नए मोड़ आते गए, संशोधन की नई धाराएं इसमें समाहित होती गई और प्रेम, रहस्य एवं भावना की नदियां बहती ही रही। कभी 'साकार सगुण' के आवर्तों में लिपटी, तो कभी 'निराकार निर्गुण' के निवर्तों में आधृत जनमानस के सम्मुख यह विचारधारा उभरती, कभी भक्ति की विकलता में डूबे संत के उद्गार के रूप में यह धारा स्पष्ट होती थी।

मध्यमार्गी संतों के आचार-विचार व उनकी व्यावहारिक साधना-पद्धति से संत परंपरा निर्मित हुई, तथा संत विचारधारा के अजस्त्र प्रवाह में समय-समय पर परिवर्तन होता गया। मूलतत्व एक होने पर भी, कभी कुछ नया जुड़ जाता है, तो कभी कुछ घट जाता है। संत विचारधारा के अंतर्गत मध्यमार्ग की परंपरा- गीता, बौद्धमत, महायान, योगाचार और नाथ संप्रदाय से होकर निर्गुण पंथ तक आई । भारतीय मध्यमार्ग, संत

विचारधारा की मूल भित्ति है। भारतीय मस्तिष्क विद्रोह और आमूल परिवर्तन में विश्वास नहीं करता। उसमें मध्यमार्ग से संतुष्ट हो जाने की प्रवृत्ति है। भारतीय संतों ने जनता के लिए ऐसा ही मार्ग प्रशस्त किया।

संतों का संप्रदाय सारग्राही संप्रदाय था। वे सत्य के पुजारी थे, अतएव प्रतीक एवं वाह्याचार को प्रमुखता नहीं दी गई। सत्य जहां भी हो, वहां से उसको ग्रहण करना चाहिए। यही सार ग्रहण की भावना संतों का धर्म बन गई।

संतमत- भारत के उत्तरी भाग में संत मत की विशेषताएं रहीं - प्रत्यक्ष अनुभव से सत्यान्वेषण, सद्गुरू महत्व प्रतिपादन, सुमिरन या नाम-स्मरण का आग्रह, तथा वाह्याडंबर की व्यर्थता।

मध्यकालीन संतों के प्रतिक्रियावादी वर्ग की खण्डन मण्डन की प्रवृत्ति और वर्णाश्रम विरोध, दार्शनिक आचार्यों की भक्ति और वैराग्य की प्रवृत्ति, वैरागियों की सरल जीवन की अभिरूचि, आलवार संतों का नाम जप व सदाचार प्रियता, दक्षिणी शैवसंतों की पर्यटन प्रियता, निरंजन साधुओं की निर्गुण उपासना व हठयोग के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, सूफी संतों की प्रेम व विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति और बाउलों की भक्ति का भावोन्माद - इन सभी प्रभावों से हिन्दी प्रदेश व हिन्दी साहित्य के संत प्रभावित हुए। इन प्रभावों ने हिन्दी के निर्गुण संतों को एक नवीन समन्वित दिशा प्रदान की। इस समन्वित प्रभाव की बहुत सी विशेषताएं संत धर्मदास व संत घासीदास में भी आई।

छत्तीसगढ़ में संत मत का प्रभाव -

छत्तीसगढ़ का भौगोलिक परिसीमन अपनी सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत के लए, अलग पहचान वनाता है। एक ओर यहां 'कवीर पंथ' की धर्मदासी शाखा की 'पीठ' है, तो 'सतनाम पंथ' का उद्गम स्थल भी है। इसी माटी में रामभक्त 'रामनामी पंथ' का वृहद् समाज है। छत्तीसगढ़ की समूची संस्कृति मानों इन्हीं तीनों पंथों की सद्वाणी से जीवन्त वनी हुई है। छत्तीसगढ़ की लोक चेतना- इन संत वाणियों की आधारशिला पर सन्निहित है। यही कारण है कि छत्तीसगढ़ की संस्कृति में, उदारता, विभिन्न वर्गों के प्रति समभाव, सहनशीलता, सदगुरू के प्रति आस्था, अतिथि सत्कार, सदाचार और भौतिक समृद्धि, धन वैभव की बढ़ोत्तरी के प्रति विरक्ति एवं 'थोड़े में सुख' का संतोषभाव दृष्टिगोचर होता है। अपने श्रम से अर्जित संपत्ति पर ही भरोसा व आत्म संतुष्टि का भाव छत्तीसगढ़ी संस्कृति का मुख्य धरातल है। यह संतों का प्रभाव है। यह संतों की धरती है। यहां की जनपदीय संस्कृति के उन्नयन में 'कवीर पंथ' और 'सतनाम पंथ' का अत्यधिक योगदान रहा है। छत्तीसगढ़ में प्रवर्तित व स्थापित कवीरपंथ का योगदान छत्तीसगढ़ी साहित्य के संदर्भ में इसलिए भी अतिशय महत्वपूर्ण हो जाता है, कि इसी के माध्यम से हम छत्तीसगढ़ी साहित्य का प्रथम लिपिबद्ध स्वरूप प्राप्त करते हैं।

छत्तीसगढ़ में धार्मिक निर्गुण पंथ एवं संतभावना -

छत्तीसगढ़ की जनपदीय संस्कृति की जमीन तलाशने पर हमें कई निर्गुण पंथ एवं संतभावना से ओतप्रोत जीवन चेतना से साक्षात्कार करना पड़ता है -

एक - **कबीर पंथ (कबिरहा)** - इसमें गुरूपूजा, नाम महिमा व वन्दगी का महत्व है। दामाखेड़ा इसका केन्द्र स्थल है और जातिपांति का भेदभाव नहीं है। गुरू की महत्व ईश्वर से अधिक है। सद्गुरू कबीर का गहन प्रभाव इस पंथ पर पड़ा । इसके प्रथम संत कवि धनी धर्मदास है। 'सत्यनाम' का उधारण, व श्वेत वस्त्र सदाचार का प्रतीक है।

दो - **सतनाम पंथ (सतनामी)** - इस पंथ में भी गुरूपूजा व वन्दगी का महत्व है। ये निर्गुन पंथी है और सद्गुरू की महिमा का गान करते हैं। 'सतनाम' (सत्यनाम)- पंथ का परिचय है। श्वेत वस्त्र सदाचार का प्रतीक है।

तीन- फकीरा पंथ (फकिरहा) - यह भ्रमणशील समुदाय का पंथ है- जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों आते हैं। ये निर्गुण पंथी है व ईश्वर को ही गुरू मानते हैं। ये एकाकी भ्रमण करते व अनासक्त और वैराग्य भावों से मुक्त गीत गाते हैं।

चार - बनजारा पंथ (बनजरहा) - यह भ्रमणशील समुदाय है। इस पंथ के लोग सामूहिक भक्ति में विश्वास रखते हैं। नृत्यगीत इनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। मूर्तिपूजा से परे, निर्गुण भक्ति व जीवन की असारता के गीत गाते हैं। यद्यपि जीविकोपार्जन के लए नृत्य-गीत का सहारा लेते हैं- पर इनके जीवन का उत्तरपक्ष, जीवन-संघर्ष की वेदना से भरा होता है - जिसे वे वैराग्ययुक्त, उदासीन भजन के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

पांच - बैरागी पंथ - ये गृहस्थ व ब्रह्मचारी दोनों प्रकार के होते हैं। देवल के वाहर भजन कीर्तन करते हैं। ये मूर्तिपूजक नहीं होते। इनकी आय का साधन नैतिक उपदेश और भजन गायन होता है। ये 'रामनाम' की महिमा का गान करते हैं।

छः - निर्गुनिया - छिद्रों वाला बड़ा वांस लेकर ये भक्तिगीत गाते हैं। यही जीवनयापन का साधन होता है। चनैनी शैली में राजा भरथरी की कथा गाकर सुनाते हैं।

सात - भजनहा - पौराणिक प्रसंगों, महाभारत और भागवत के प्रसंगों की अभिनय शैली में गाना एवं कीर्तन शैली में मंडली बनाकर, घूम-घूम कर गाना- यह 'भजनहा' समूह का नित्य का कार्य होता है। संपूर्ण वाद्यों के साथ, राग-रागिनियों का प्रयोग करते हुए भजन सुनाना इनका प्रमुख कार्य होता है। अधिकतर पण्डवानी गायक इसी 'भजनहा' समूह के अंतर्गत समाविष्ट किए जाते हैं। छत्तीसगढ़ के धार्मिक व सांस्कृतिक इतिहास में यह बात रेखांकित करनी होगी कि पण्डवानी के प्रवर्तक व उद्भवकाल के पण्डवानी गायन वेदमती शैली के अनूठे प्रयोगकर्ता थे और वे 'भजनहा' कहलाते थे। जनता में वे प्रणम्य थे। 'भजनहा' किसी जाति विशेष के नहीं होते, वरन् अभिरूचि के अनुसार किसी भी जाति व वर्ण से उत्पन्न होते हैं।

आठ - रामनामी (रामनमिहा) - छत्तीसगढ़ में निवास करने वाले 'रामनामी' समुदाय के लोग- जिनहें 'रामनमिहा' के नाम से जाना जाता है, रामकीर्तन एवं भजन के कार्यों में सदा तन्मय पाए जाते हैं। ये लोग पूर्णतः अहिंसावादी एवं श्रम के प्रति आस्थावान हैं। कृषि इनका मुख्य पेशा और आय का साधन है। रायपुर, बिलासपुर एवं रायगढ़ जिले के ग्रामों में प्रायः इस संप्रदाय के लोग अधिक संख्या में निवास करते हैं। पूरे शरीर में ये 'राम' नाम गोदवा लेते हैं। ये राम के सगुण रूप को नकारकर निर्गुण रूप के उपासक हैं। प्रतिवर्ष पौष शुक्ल एकादशी से त्रयोदशी तक तीन दिनों के लिए मेला लगता है। छत्तीसगढ़ के लगभग नब्बे ग्रामों में इस संप्रदाय के लोग रहते हैं, जहां रामनाम का विजय स्तंभ निर्मित किया गया है। विजय स्तंभ पर रामनाम शब्द अंकित कर दिया जाता है तथा स्तंभ के ऊपर श्वेतवस्त्र पर रामांकित ध्वज फहराकर कीर्तन को और भी आकर्षक रूप प्रदान किया जाता है। भारत में औरंगजेब के शासनकाल में उत्पीड़न से आक्रांत होकर 'रामनमिहा' संप्रदाय की पहली पीढ़ी छत्तीसगढ़ आई। ये हरियाणा के 'नारलोन' नामक शहर से आकर महानदी के तट पर बस गए। वे राम को अपना गुरू मानते हैं। महानदी घाटी के ग्राम्यांचलों में बसे, रामनाम को समर्पित 'रामनमिहा' पारस्परिक सद्भाव, शांति व अतिथिप्रेमी के रूप में प्रसिद्ध हैं। छत्तीसगढ़ी संस्कृति की जड़ में विनम्रता 'रामनमिहा' संप्रदाय की देन है।

मिलने वाले से यह पूछना - 'बने रहा राम राम' या 'लइका लोक बने बने हावै राम राम' अथवा अतिथि से विदा के समय - 'दया मया धरे रइहा राम राम' - सहज प्रेमपूर्ण हृदय का प्रतीक है। शिवरीनारायण रामनामी लोगों का पुण्यतीर्थ हैं ये लोग रामनामी होते हुए भी राम की मूर्तिपूजा नहीं करते, किन्तु घरों की दीवारों पर रामचरित मानस की चौपाइयां एवं राम-राम लिखकर अपने पारिवारिक वातावरण को 'राम मय' बना देते हैं। छत्तीसगढ़ की संस्कृति में 'संत-भावना' को संपुष्ट करने में 'रामनमिहा' संप्रदाय का भी विशेष योगदान रहा है।

संत और वाद्य - निर्गुण पंथ के सभी गायक, प्रायः वाद्ययंत्रों का प्रयोग करते हैं। छत्तीसगढ़ में जिन वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता है- वे हैं - इकतारा, खंजेरी, झांझरी, बांसुरी, झांझ, बांस, ढोलक, मंजीरा आदि।

संत परंपरा में अनगढ़ जीवन शैली की सोंधी महक - छत्तीसगढ़ की धरती ने अपनी अनगढ़, सहज, सरल जीवन की सोंधी महक चारों ओर प्रसारित किया है। यहां की गाथाएं, गीत, पौराणिक कथा प्रसंगों से भरा हुआ साहित्य - जो मौखिक परंपरा से प्राप्त है - सदा आकृष्ट करता रहा है।

लोक जीवन का आधार कभी पोथियाँ नहीं रहीं। ये 'लोक' कहे जाने वाले लोग नगर में परिष्कृत रूचि संपन्न और सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।

लोक संस्कृति सदा शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने 'वेद' से पृथक 'लोक' की सत्ता को स्वीकार किया है -

'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्राथितः पुरूषोत्तम।'

अर्थात मैं 'लोक' और 'वेद' में भी पुरूषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।

लोक साहित्य में उपासना पद्धति प्राचीनकाल से चली आई है। उपासना पद्धति एक तो रूढ़ होती है, दूसरी निरगुनिया अर्थात् अरूप नाम का जाप और निष्काम कर्म। लोक साहित्य में उपासना के ये दोनों ही रूप प्राप्त होते हैं।

जहां अरूप पर विचार किया जाता है - अनगढ़ अभिव्यक्ति के द्वारा केवल मानवीय हित साधन के लिए अनेक रूपक चित्र बांधे जाते हैं और सुख-दुख को समभाव से देखते हुए मनुष्य को ढाढ़स बंधाया जाता है - वहां लोक-साहित्य में 'संत-भावना' प्रबल होती है। मेरा स्पष्ट मत है कि संत, लोकजीवन से ही आते हैं, बनते हैं और उन्हें में रमते भी हैं।

छत्तीसगढ़ी जनपदीय साहित्य में संत मत प्रचुर मात्रा में निहित हैं। छत्तीसगढ़ लोक-गीत और लोक-गाथाएं मानो 'संत भावधारा' वहाती ले जाती है और महानदी, अरपा तथा इन्द्रावती की धाराओं में बिखेर देती हैं। तीनों महानदियों के रेतीले कछारों और तटीय ग्रामों में बसे लोक-जीवन में संत-भावना समाई हुई है। समूची छत्तीसगढ़ी संस्कृति में समाविष्ट संत भावना वरेण्य और प्रणम्य है, क्योंकि धन के अभाव में भी जीवन जीने का मार्ग सुलभ करती है।

छत्तीसगढ़ की संत परंपरा में संत धर्मदास और कबीर पंथ का योगदान -

पूर्व में मैंने जिनकी चर्चा की है - उन विभिन्न संतों एवं पंथों का प्रभाव छत्तीसगढ़ की संत परंपरा में पड़ा-उनमें संत धर्मदास और उनके द्वारा प्रवर्तित कबीरपंथ प्रमुख है। संत धर्मदास कबीरपंथ के प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीर पंथ की धर्मदासी शाखा का केन्द्र दामाखेड़ा है- जो विश्व में कबीर पंथ का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। यद्यपि यह शाखा गृहस्थ आचार्यों की शाखा है, पर गृहस्थ और वैरागी, सन्यासी- दोनों प्रकार के कबीर पंथियों का स्वागत यहां होता है। यह उदार शाखा है, जहां न केवल भारत, बल्कि विश्व के कोने-कोने से सभी प्राकर के कबीर अनुयायी आते हैं और वार्षिक मेले में भाग लेते हैं।

छत्तीसगढ़ की समूची धरती संत कबीर एवं संत धर्मदास की बानियों से प्रभावित एवं उनकी सामाजिक समरसता की भावना आप्लावित है। कबीर साहब का आविर्भाव संवत् 1455 में और सतलोक गमन विक्रम संवत् 1575 में। कबीर साहब के प्रमुख शिष्य संत धर्मदास का जन्म बांधवगढ़ में संवत् 1452 में हुआ और सतलोक गमन संवत् 1569 में। इस प्रकार कबीर साहब 120 वर्ष की आयु तक जीवित रहे। उनकी तुलना में धर्मदास जी 117 वर्ष जीवित रहे। संवत् 1520 में कबीर साहब ने बांधवगढ़ में संत धर्मदास को दीक्षित किया

व उपदेश दिया। संत धर्मदास वैष्णव थे। उनके गुरू रूपदास विट्ठल थे। संत धर्मदास पढ़े लिखे एवं शास्त्रों के ज्ञाता भी थे, अतः वैष्णवी कोमलता उनके हृदय में सतत् रूप में विद्यमान थी।

संत धर्मदास की यह बानी -

'धरमदास बंधी के बानी। प्रेम प्रीति भक्ति मैं जानी।'

उन्हें बांधवगढ़ निवासी प्रमाणित करती है। वे बांधोगढ़ के धनी कसौंधन वैश्य थे। उनकी पत्नी का नाम आमिन था- जो स्वयं भी कविता लिखती थी।

संत धर्मदास के बड़े पुत्र नारायणदास ने कबीर साहब से दीक्षा नही ली। वह अपने पिता पर रूष्ट हुआ कि - 'तीजेपन पिता बौराई।' कबीर से दीक्षा लेने के बाद धर्मदास के द्वितीय पुत्र का जन्म संवत् 1538 में हुआ। संवत् 1569 में धर्मदास कबीर साहब के साथ उड़ीसा गए, वहीं जगन्नाथपुरी में धर्मदास का सतलोक गमन हुआ एवं यही चूड़ामणि को धर्मदास का उत्तराधिकारी घोषित कर 42 पीढ़ियों तक आचार्यत्व करने का आशीर्वाद दिया।

संत धर्मदास के पुत्र चूरामणि जिन्हें मुक्तामणि भी कहा जाता है- बांधोगढ़ से कुदुरमाल आ गए। कबीर पंथ के आचार्य की गद्दी कुदुरमाल से रतनपुर, फिर मण्डला, फिर कवर्धा, फिर दामाखेड़ा में क्रमशः स्थापित हुई। इस प्रकार वर्तमान में कबीर पंथ की धारा बांधवगढ़ से दामाखेड़ा तक आकर समूचे छत्तीसगढ़ को प्रभावित कर गई।

अनासक्तिपूर्ण गृहस्थजीवन व्यतीत करना ही जीवन का मध्यमार्ग है। जीवन में अपना कर्तव्य कर्म करते हुए, किसी भी प्रकार के मोह-माया से विचलित हुए बिना गृहस्थ धर्म का पालन करना संत का लक्षण होता है। शांत चित्त व अनवरत प्रसन्नता, समबृद्धि और सत्संग में रत रहना संत की विशिष्टता है।

संत धर्मदास की रचनाओं में कहीं भी जीवन का असंतोष व विक्षोभ नहीं मिलता है। धर्मदास एक सुखी गृहस्थ थे। संतोष उनके जीवन का परम आधार था। यही भाव व संस्कार कबीर पंथ की आधारशीला है।

जातिपांति के भेदभाव को तोड़कर सामाजिक समानता का पाठ पढ़ाने वाले कबीर साहब के शिष्य संत धर्मदास की शैली आक्रामक नहीं थी। वे शांत चित्त से प्रेम का पाठ पढ़ाते रहे। उनकी बानियों में प्रेम की सलिला प्रवाहित होती है। यह पंथ सदाचार की शिक्षा देने वाला पंथ है। कबीर पंथ की विशेषताएं जो जन-जन को प्रभावित कर गई वे हैं -

1. एक अतीत ब्रम्ह सत् पुरूष को छोड़कर, अन्य किसी का ध्यान नहीं करना चाहिए,
2. सत्पुरूष और कबीर साहब एक है,
3. मनसा वाचा कर्मणा गुरू सेवा करनी चाहिए, गुरू के वचनों पर विश्वास करते हुए गुरू के कृपापात्र बनो,
4. भेद बुद्धि त्यागकर साधु सेवा, श्रद्धा भक्ति से करनी चाहिए,
5. सभी चराचर जीवों पर समान भाव से दया रखो,
6. मांसाहार पाप है,
7. मदिरापान से दूर रहो,
8. व्याभिचार मनुष्य की नर्क के रास्ते पर ले जाता है,
9. प्रतिमा पूजन व्यर्थ है, गुरू के स्वरूप का ध्यान ही सार है,
10. न मिथ्या बोले, न मिथ्या साक्षी दे, न झूठी प्रतिज्ञा करे,
11. चोरी करना, जुआ खेलना व इनका साथ देना महापाप है,

12. सबसे मीठे वचन बोलें,

13. 'सत्यनाम' का स्मरण, कीर्तन व भजन करें।

14. श्वेत शुभ्र वस्त्र धारण करें,

15. सकाम भक्ति, तीर्थ यात्रा, व्रत उपासनादि सब यम के बंधन हैं,

16. हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, प्रभृति सभी धर्म व जाति के लोग सुगमतापूर्वक कबीर पंथ में सम्मिलित हो सकते हैं, सबके लिए एक समान भक्ति मुक्ति की व्यवस्था है,

17. मौन सर्वोत्तम गुण है,

18. स्वर्ग नरक की कल्पना अज्ञानियों के लिए है,

19. शुभाचरण युक्त विनम्रता शीघ्र सफलता प्रदान करती है,

20. सच्चे प्रेम के विना भक्ति व्यर्थ है,

21. न तो किसी को शाप देना चाहिए और न ही किसी का अहित करना चाहिए,

22. सर्व धर्म समान है, सभी का मान करना चाहिए,

23. अहंकार त्याग के बिना ईश्वर को सर्वव्यापक समझना असंभव है,

24. गुरू आज्ञा का पालन करना ही महान तपस्या व भक्ति है,

25. सत्संग ही ईश्वर प्राप्ति एवं मुक्ति का प्रमुख साधन है।

यह विचारधारा कबीर पंथ की है - जो संत मत की अनुगामिनी है।

कबीर पंथ में वाह्याचार - कबीर पंथ में कुछ वाह्याचार भी आ गए है-

जैसे - **चौका विधान** - चौका आरती विधान को कबीर पंथ में सात्विक यज्ञ की संज्ञा दी गई है, ये यज्ञ चार प्रकार के हैं -

1. जन्मौती या सोलह सुत का चौका - जो संतान प्राप्त की कामना या पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में होता है।

2. चलावा चौका - मृत व्यक्ति की आत्मा की शांति के लिए

3. एकोत्तरी चौका - जो विधि एक सौ एक पूर्वजों की शांति लाभ के निमित्त।

4. आनंदी चौका - किसी नवीन व्यक्ति को, कबीर पंथ में दीक्षित होते समय अथवा अन्य प्रकार के आनंदोत्सव के निमित्त।

नारियल - कबीर पंथ में 'नारियल' का विशेष महत्व है। 'चौका' के लिए नारियल का प्रयोग क्यों होता है? इस संबंध में यह मत मान्य है -

'प्राचीन काल में यज्ञादि शुभ कर्मों में पशु बलि होती थी। जनता को इस बलि द्वारा मोक्ष प्राप्ति का आश्वासन मिलता था। इसे महान घृणित कार्य समझा गया। कबीर व धर्मदास ने जीव हत्या के बदले नारियल अर्पित करके ही मोक्ष प्राप्ति अथवा त्रितापादि से मुक्त होना बतलाया। नारियल का तोड़ना एक अहिंसात्मक बलिदान समझा गया है जो काल अथवा निरंजन के उपलक्ष्य में कबीर पंथियों द्वारा अपने लिए, सत्यलोक की प्राप्ति के लिए किया जाता है । इसी अहिंसात्मक बलिदान के विषय में अंग्रेज विद्वान 'रेवरेण्ड की' ने अपने ग्रंथ 'कबीर एण्ड हिज फालोअर्स' (1931-कलकत्ता) में लिखा है-

"The breaking of coconut is regarded as bloodless sacrifice, a peace offering to Niranjan, in order that members of the Panth may enter the Satyalok."

कबीर पंथ में आज की स्थिति में वाह्याचार बढ़ गया है। जिन कबीर साहब ने मूर्तिपूजा का विरोध किया था- आज उन्हीं कबीर साहब की प्रतिमा या चित्र की पूजा की जाती है। गुरू का महत्व प्रत्येक धर्म व पंथ में महत्वपूर्ण है - पर गुरू, ईश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थ या मार्ग प्रदर्शक के रूप में उपस्थित होते हैं।

कबीर पंथ ने सामाजिक भेदभाव व कुरूतियों को दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है - इसे हमें स्मरण रखना चाहिए। यद्यपि कई वाह्याचारों एवं कर्मकाण्डों में कबीर पंथ उलझ गया है, पर यदि सुधारक दृष्टिकोण वाले शिक्षित अनुयायी प्रयास करें, तो पंथ के भीतर का वाह्याचार कम हो सकता है। प्रत्येक युग में जब भी कोई नया पंथ पड़ा होता है- तो उसका स्वरूप सुधारवादी व शुद्ध होता है, धीरे-धीरे कालांतर में उसमें उपासना की नई स्थानीय पद्धतियां जुड़ती जाती है। इतिहास साक्षी है- हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म एवं इस्लाम के, अनेक शाखाओं एवं उप शाखाओं में विभक्त होते जाने से धर्म एवं पंथ के स्वरूप में बदलाव आता गया एवं संकीर्णता बढ़ी । अतः कबीर पंथ के वाह्याचार उतने चिंतनीय नहीं हैं।

संत धर्मदास के पद - छत्तीसगढ़ की संत परंपरा में संत धर्मदास के गीतों का व्यापक प्रभाव रच बस गया है। कबीर की वाणी में उच्चवर्ग, सत्ता, मुल्ला पंडितों के प्रति जो आक्रोश व्यक्त हुआ है तथा वाह्याडंबरों के प्रति जो तीक्ष्ण व्यंग भाव मिलता है, वह संत धर्मदास में अतिशय विरल और विनम्र है। संत धर्मदास में कबीर की आत्मानुभूमि, आत्मोत्फुल्लता के भावों का ही अग्रिम विकास हुआ है। उनके गीत उच्च कोटि के काव्यात्मक उद्‌गारों से भी संपृक्त हैं। यदि हम विविध गाथाओंके रचयिता जनकवियों को छोड़ दें, तो संत धर्मदास का गीत साहित्य विपुल है तथा उनमें एक साधक के आध्यात्मिक विकास की समग्र स्थितियों के दर्शन हो जाते हैं। वे सद्‌गुरू को प्रणिपात करते हैं, मायारूपी बंधन से मुक्ति की प्रार्थना करते हैं। कानों से ईश्वर के पवित्र नाम का सुधापान करने के अभिलाषी हैं तथा ईश्वर साक्षात्कार के रत्न पदार्थ को प्राप्त करने के आकांक्षी हैं -

जमुनिया की डार [illegible] टोर देव हो।

एक जमुनिया के चउदा डारा, सार सबद ले के मोड़ देव हो।

काया कंचन गजब पियासा, अमरित रस मां बोर देव हो।

सतगुरू हमरे ज्ञान जौहरी, रतन पदारथ जोर देव हो।

धरमदास के अरज गोसाई, जीवन के बांधे डोर छोर देव हो।

ईश्वरीय अनुभूति को लौकिक प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति देते हैं। जैसे -

संइया महरा, मोरी डोलिया फंदावौ।

काहे के तोर डोलिया, काहे के तोर पालकी, काहे के ओमा बांस लगावौ।

आव भाव के डोलिया पालकी, सतनाम के बांस लगावौ।

परेम के डोर जतन से बांधो, ऊपर खलीता लाल औढ़ावौ।

ज्ञान दुली झरि दसावो, नाम के तकिया अरध लगावौ।

धरमदास बिनवै कर जोरी, गगन मंदिर मा पिया दुलरावौ।

जहां धर्मदास ईश्वरीय साक्षात्कार के चरम क्षणों का प्रत्यक्षतः काव्यात्मक निवेदन करते हैं, वहां उनकी आत्मोत्फुल्लता शब्दों की संकीर्ण सीमाओं को तोड़कर बाहर छलक पड़ती है- जैसे -

आज घर आये साहब मोर।

हुलसि हुलसि घर अंगना बुहारी, मोतियन चऊंक पुराई।

चरण धोय चरनामरित ली हैं, सिंघासन बइठाई।

पांच सखी मिल मंगल गाहैं, सवद ला सुरत समाई।

संत धर्मदास छत्तीसगढ़ी के प्रथम कवि हैं, जिन्होंने लोकगीतों की सहज, सरल शैली में निगूढ़तम दार्शनिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की और छत्तीसगढ़ी शब्दों की शक्तियों को आत्मसात करते हुए उसे उच्चतर मानवीय भावों के संवहन योग्य बनाया। कभी-कभी संत धर्मदास मन की मूर्खता पर खीझ उठते हैं और चेतावनी के स्वर में कहते हैं -

'थोरे दिन की जिंदगी, मन चेत गंवार।

कागद के तन पुतरा, डोरी साहेव हाथ।

नाना नाच नचावही, नाचै संसार।'

संत धर्मदास का काव्य गुरू की उपासना का काव्य है। किसी भी कवि या संत का संपूर्ण जीवनवाणी के सार में लिप्त रहता है। संत धर्मदास के अंतर्मन की भाषा या कथ्य उसकी वाणी या पदों में हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। यह कथ्य ही संत धर्मदास का वास्तविक व्यक्तित्व है। कबीर की अक्खड़ता उनकी 'वानियों' में स्पष्ट रूप से झलकती है। मीरा के हृदय की पीर उनके पदों में निहित है। सूर की अनन्य भक्ति विह्वलता व तन्मयता उनके पदों में रूपायित है। धर्मदास के भीतर की परोपकार वृत्ति, सेवाभाव एवं गुरू व 'साहेब' के प्रति अनन्य भक्ति उनके आर्त्तभाव से मुक्त शब्दों में निहित है। धर्मदास के शब्दों में, समाज के ऊपर सशक्त प्रहार नहीं किया गया है, वरन् कोमल, प्रेमप्लावित, एकांत चिंतन का भाव है।

कबीर व धर्मदास - कबीर व धर्मदास के व्यक्तित्व में एक मूलभूत अंतर यह है कि कबीर समाज में आमूल क्रांति चाहते हैं, धर्मदास कहीं भी 'सामाजिक विचार' प्रकट नहीं करते हैं। कबीर नेतृत्व की क्षमता रखते हुए विशेष पीड़ित लोगों का आह्वान करते हैं। धर्मदास इस संदर्भ में भी मौन हैं। धर्मदास ने इन दोनों क्षेत्रों को छोड़ दिया है। धर्मदास ईमानदारी से, मौनभाव से गुरू की उपासना की है।

धर्मदास के व्यक्तित्व को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। **प्रथम** तो उनका मौलिक भक्त कवि का रूप उनके व्यक्तित्व के इस रूप ने सरस 'शब्दों' की रचना की। **द्वितीय** - कबीर के अभिन्न श्रेष्ठ व सत्यगामी का रूप- इस रूप ने धर्मदास को कबीर की वाणी का रूप निर्माता या लिपिकार बनाया। कबीर की वाणी को लिपिवद्ध करने वाले धर्मदास का व्यक्तित्व तथा उनका अपना मौलिक भक्त कवि व्यक्तित्व दोनों भिन्न हैं। धर्मदास के इन दोनों रूपों में निस्संगता है। दोनों रूप कहीं भी मिश्रित नहीं हो पाए हैं। कबीर के भावों को ज्यों का त्यों लिपिवद्ध करना धर्मदास के व्यक्तित्व की महती उपलब्धि एवं उनकी महानता ही कही जाएगी।

छत्तीसगढ़ में कबीर के विचारों को लिपिबद्ध करके ज्यों का त्यों प्रसारित करने एवं सामाजिक चेतना जगाने का श्रेय निश्चित रूप से संत धर्मदास को जाता है। छत्तीसगढ़ की संस्कृति कबीर पंथ की सामाजिक समरसता से सरावोर है।

छत्तीसगढ़ की संस्कृति में संत भावना लाने का दूसरा बड़ा स्त्रोत 'सतनाम पंथ' व ' संत घासीदास' -

कबीर पंथ के अनुयायियों में से ही एक विशेष वर्ग (समाज का दलित शोषित वर्ग) आगे चलकर सतनाम पंथ के रूप में कबीर पंथ से अलग हो गया। सतनाम पंथ की स्थापना छत्तीसगढ़ के महान संत घासीदास ने की थी। सतनाम पंथ की स्थापना सामाजिक विद्रोह के रूप में हुई। संत घासीदास के पूर्वज पंजाब क्षेत्र में मुसलमानों के अत्याचार से त्रस्त व पीड़ित होकर छत्तीसगढ़ चले आए थे। घासीदास का जन्म छत्तीसगढ़ के वलौदावाजार क्षेत्र के 'गिरौदपुरी' नाम गांव में एक कृषक परिवार में हुआ था। कहते है कि एक वार उनकी भेंट संत जगजीवनदास से हुई, जिन्होंने उन्हें 'सतनाम' प्रदान किया। मंत्र दीक्षा के बाद संत घासीदास विरक्त हो उठे और घर-वार छोड़कर कोमाखान के जंगलों में विलीन हो गए। वहां एक तेंदू के वृक्ष के नीचे उन्होंने सतनाम की साधना की और पूर्ण काम होकर लौटे। उनका जीवन इस आध्यात्मिक साधना के आलोक से जगमगा उठा। उन्होंने समाज से पीड़ित दलित शोषित वर्ग को 'सतनाम' की दीक्षा दी। लोगों ने उन्हें गुरू के पद पर अधिष्ठित किया और स्वयं को 'सतनामी' कहा। संत घासीदास ने अपने अंनुयानियों को

सतनाम का जाप करने का उपदेश दिया। मूर्ति पूजा का खंडन करने एवं वर्णभेद को नकारते संत घासीदास की वाणी में संत कबीर के उपदेशों की ध्वनि गूंज रही थी।

कबीर पंथ व सतनाम पंथ मूलतः एक ही आदर्श को अपनाए हुए हैं, पर गुरू परंपरा से अलग-अलग हो गए। सतनाम पंथ के अनुयायी मांस का भक्षण व मदिरापान नहीं करते। 'जैतखंभ' में लगी श्वेत ध्वजा फहराते व दीप जलाते हैं। ये मूर्तिपूजा नहीं करते वरन् सूर्य नमस्कार करते हैं।

'सतनाम व सदाचरण का रचनाएं भी मूलतः सांसारिक बंधनों की असारता और ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति की अभिलाषा का चित्रण करती है। 'चल हंसा अमर लोक जइबो' में मायावी संसार की स्वार्थपरता को स्पष्ट करते हुए ईश्वर के नाम को शाश्वत शांति के क्रोड़ के रूप में चित्रित किया गया है

उदा. - 'चलौ चलौ हंसा अमर लोक जइबो, इहां हमर संगी कोनो नइयै।

एक संगी हावय घर के तिराई, देखे मां जियरा जुड़ायै।

ओहू तिराई हृदय बन भर के, मरे मा दूसर बनायै।

एक संगी हावय कोख के बेटवा, देखे मा धोसा बंधायै।

ओहू बेटा हावय बनत भर के, मरे मा ओहू तिरियायै।

एक संगी परभू सतनाम है, पापी मन ल मनायै।

जनम मरन के सबो दिन संगी, ओही सरग अमरायै।

इस गीत की मूल भावना में संत कबीर का प्रभाव स्पष्ट है। इस दृष्टि से - 'खेलबे दिन भर मइहर मा' जैसे गीत उल्लेखनीय है।

अंतिम रूप से हम कह सकते हैं कि छत्तीसगढ़ की संत परंपरा में संत धर्मदास और संत घासीदास की विचारधारा का गहन व व्यापक प्रभाव पड़ा।

डॉ. श्रीमती सत्यभामा आडिल
एम.आई.जी.-5, सेक्टर 1,
शंकर नगर, रायपुर
फोन- 2428099

छत्तीसगढ़ की संत परम्परा

-डॉ. देवी प्रसाद वर्मा

इतिहास प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएंन सांग भारत आया था। उसने भारत के प्रमुख स्थानों का भ्रमण किया। वह सन् 639 के जून माह में कलिंग का भ्रमण करते हुए उड़ीसा के रास्ते से कोसल आया। उस समय कोसल की राजधानी सिरपुर थी। हुएन सांग ने इस क्षेत्र को कोसल ही कहा। सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध की स्मृति में एक स्तूप का निर्माण कराया था। इस कोसल राज्य में भगवान गौतमबुद्ध के आगमन का उल्लेख ग्रंथ "अवदान शतक" 24 में भी है।

इस कथा के अनुसार उत्तर कोसल के नरेश प्रसेनजीत और कोसल (छत्तीसगढ़) के नरेश विजयस के मध्य युद्ध छिड़ गया। युद्ध लम्बे समय तक चला। अंत में उत्तर कोसल का नरेश प्रेसनजित जब हार के कगार में पहुंच गया तब भगवान गौतम बुद्ध के शरण में गया। कोसल (छत्तीसगढ़ी) नरेश विजयस ने भगवान बुद्ध को अपनी राजधानी आने का आग्रह किया। उनका आग्रह स्वीकार कर भगवान गौतम बुद्ध सिरपुर पधारे और तीन माह तक रहे। भगवान राम दण्डकारण्य में प्रवेश करने पर अनेक ऋषि मुनियों के आश्रम मिले। ऋषि मुनियों ने श्री राम से कहा

' तेवयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।
नगस्थो वनस्थे वात्वंनो राजा जनेश्वरः ।' (अरण्य कांड सर्ग-एक)

हे राम। हम आपके राज्य में निवास करते है। अतः आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए। आप नगर में रहे या वन में। हम लोगों के राजा आप ही है। आप समस्त जन समुदाय के पालक और शासक है। आगे चलकर शबरी की कथा भी मिलती है। शिवरीनारायण का वह स्थान श्रद्धा का स्थान बना हुआ है।

इस पूर्व भूमिका के बाद हम, धनी धर्मदास जो कबीर दास के मुख्य शिष्य थे की चर्चा करेंगे। वे कबीर पंथ के श्रेष्ट शाखा छत्तीसगढ़ी शाखा के प्रमुख भी थे। उन्होंने कबीर दास के पदों के संकलन और संरक्षण करने की कार्य किया। छत्तीसगढ़ी के प्रथम कवि का स्थान आपको ही प्राप्त है।

धनी धर्मदास का जन्म संवत् 1472 अर्थात 1416 ई. कार्तिक मास के तीसवें दिन अर्थात् पूर्णिमा को बांधोगढ़ में हुआ था। उनके पिता का नाम मनमहेश और माता का नाम सुधर्मावती था। वयस्क होने पर आपका आमिन देवी से हुआ। धर्मदास सम्पन्न तथा वैष्णव गृहस्थ थे। उनके गुरू का नाम रूपदास था लेकिन कबीर दास जी से भेंट के बाद वे निर्गुण भक्तिधारा में डूब गये। संत कबीर दास जी से उनकी पहली भेंट मथुरा में हुई। लौटकर एक वर्ष का गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के बाद वे काशी गए और कबीरदास जी से विधिवत् शिष्यता ग्रहण की।

1. संवत् चौदह सौ बावन बीसा ।
   कार्तिक शुक्ल पक्ष दिन तीसा ।।
2. धरमदास बांधो की बानी ।
   वरन कसौधन जाति की बानी ।।

धरमदास की सबसे बड़ा विशेषता यह थी कि उन्होंने जन भाषा (छत्तीसगढ़ी) को अपनाया और यही कारण है कि आज भी उनके पद लोक गीतों की तरह उनके समर्थकों के मध्य गाये जाते हैं। एक उदाहरण देखिये -

अमर लोक में डेग विसामाय
वरन कमल के सेवा करहूं

उहां के गये बहुर न अइहौ ।
छोड़ो खेल के आसा, छिन में जात बिलाय

छत्तीसगढ़ फ्यूडिटरी स्टेट्स गजेटियर के अनुसार- धर्मदास रामगढ़ पर्वत (सरगुजा जिला) में समाधि ली। वहां के बैगा के अनुसार पर्वत के शिखर पर जो कबीर चौरा है। वही धरमदास का समाधि स्थल है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य :

महान दार्शनिक तथा पुष्टि मार्ग संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्यका जन्म चैत्र मास कृष्ण पक्ष की एकादशी को संवत् 1535 अर्थात् सन् 1479 ई. रायपुर जिले में स्थित चम्पारण में हुआ था। महाभारत में चंपारण का उल्लेख कोसल के अन्तर्गत किया गया है। यह राजिम के पास है। छत्तीसगढ़ पुण्य भूमि है, तपोभूमि है वैदिक युग में श्रृंगी ऋषि, अत्रि मुनि, अगस्त्य मुनि, लोपा मुद्रा, वाल्मीकि, मतंग, शरभंग, माण्डकर्णी आदि ऋषि मुनियों के आश्रम इसी छत्तीसगढ़ में थे।

वल्लभाचार्य जी के पिता का नाम था लक्ष्मण भट्ट और माता का नाम इल्लमा गारू था। वल्लभाचार्य जी भारद्वाज गौत्र के तेलंग ब्राम्हण थे।

प्रभु का अनुग्रह दो प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है:-

1. स्वयं प्रभु की इच्छा से
2. उनके प्रति निष्काम भक्ति से

आपने निष्काम भक्ति का उपदेश दिया है। महाप्रभु द्वारा संस्थापित पुष्टि मार्ग में अनेक भक्त कवि हुए। उनमें प्रमुख थे महाकवि सूरदास, कुम्भनदास, परमानंददास, कृष्णदास गोसाईं। विट्ठल दास ने पुष्टि मार्ग के अष्ट छाप कवियों के रूप में इनहें सम्मानित किया है। उन्होंने दो दर्जन ग्रंथों की रचना की जिसमें उनके दार्शनिक होने का भी प्रमाण प्राप्त होता है। कुछेक ग्रंथों के नाम (1) स्वार्थदीप (2) षोडश ग्रंथ समुच्चय (3) पुरूषोत्तम सहस्त्रनाम (4) विविध नामावली (5) मधुराष्टक (6) अणुभाष्य (7) श्री सुबोधनी जी

<u>महंत संत दूधाधारी महाराज :</u>

वे महात्मा थे तथा वे महात्मा गरीबदास के शिष्य थे। उनका जन्म 1524 में सरस्वती नदी के तट पर हुआ था। आपके पिता का नाम पं. शुभदयाल जी गौड़ था। आज जो दूधाधारी मठ है उनके ही द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है। वे केवल दूध का आहर करते थे। बाल्यकाल में वे बीमार पड़े तब गरीबदास बालक को लेकर झीथड़ा ग्राम आ गये। वहां उनके गुरू कुआवाजी महाराज निवास करते थे। कुवाजी महाराज ने बालक को आशिर्वाद दिया। इसके बाद बालक को सन्यास की दीक्षा दी और श्री सम्प्रदाय में दीक्षित किया। सन्यास के बाद बलभद्र दास को अनेक सिखियां प्राप्त हुई। वे मथुरा, वृंदावन, अयोध्या, काशी, प्रयाग, अमरकंटक होते हुए रामगढ़ पर्वत पर पहुंचे। वहां वे कुछ समय तक तपस्या करने के बाद वनग्राम तुरतुरिया पहुंचे, जहां प्राचीन काल में महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था।

" यह विधि गुरू आज्ञा सिरधारी।
आये तुरतुरिया वन भारी।।
वाल्मीकि आश्रम निकट, सरित कुण्ड पुनीत।
रहे वहां सन्तन सहित, सिद्ध गुफा भरि सहित।।

उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके परम प्रिय शिष्य 20 सितम्बर 1995 को उनके प्रिय शिष्य राजेश्री रामसुन्दर दास जी गद्दी में बैठे।

महान संत घासीदास

गुरू घासीदास का जन्म सोमवार 18 दिसम्बर 1756 को रायपुर जिले के बलौदाबाजार के अन्तर्गत गिरौद ग्राम में हुआ। वे निरंतर भक्तिमार्ग के लिए साधन सोचते रहते थे। मंदिरों में जाने के बजाय मन में उपाय ढूंढने लगे। वे सोनाखान की पहाड़ी पर आंवले और धौरा वृक्ष के नीचे बैठ गये। ठीक उसी प्रकार जैसे भगवान बुद्ध वट वृक्ष के नीचे बैठे थे। वहीं उन्हें "सतनाम" का बोध हुआ। सत्य ही ईश्वर का दूसरा नाम है। मन-वचन कर्म से सत्य का पालन करना सत्य धर्म है। उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई। उनके अनुयायी सतनामी कहलाए। उनके उपदेश के प्रमुख बिन्दु निम्नानुसार है :-

1. सत्य ही ईश्वर है।
2. मनुष्य मनुष्य समान है, छुआ-छूत, ऊंच-नीच का भेद मत करो।
3. सभी प्राणियों पर दया करो।
4. नारी के प्रति सम्मान का भाव रखो। उन्हें बराबरी का अधिकार दो।
5. मांसाहार और मद्यपान का त्याग करो।
6. मूर्तिपूजा में मत पड़ो। सात्विक आहार की आदत डालो।
7. केवल सूर्य की पूजा करो ताकि तुम्हारा हृदय प्रकाशवान और मष्तिक ऊर्जावान हो।

कहते हैं कि भण्डार ग्राम की लोहारिन उनकी शिष्या बन गई। उसने अपनी सम्पत्ति गुरू जी को अर्पित कर दी। तबसे गिरौदपुरी से आकर भण्डारपुरी में निवास करने लगे और उन्होंने जोरदार सामाजिक आंदोलन छेड़ा जिसे आगे चलकर पं. सुन्दरलाल शर्मा ने सतनामियों को स्वर्णों के तरह अधिकार देने के लिए जनेऊ धारण कराया मंदिर प्रवेश आदि कराया।

संत सेनानी यति यतनलाल :

आपका जन्म सन् 1894 में राजस्थान के बीकानेर में हुआ था। गणि जी श्री विवेकवर्धन जी उन्हें लेकर रायपुर आ गये। वे देखते ही देखते गणित और भाषा के अच्छे विद्वान बन गये। 1924 से 25 तक जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे। 25-8-1930 को यति जी ग्राम तमोरा में जुलूस संचालन करते हुए गिरफ्तार किये गये और उन्हें एक साल की सजा हुई। आन्दोलन का प्रचार करने के लिए यति जी को दौरा करने के लिए भेजा गया उनके साथ कांतिकुमार भारती भी थे। उन्हें 6-6 माह की सजा हुई।

सन् 1933 में वे हरिजन आन्दोलन के प्रचार में जुट गये इसी आंदोलन के कारण 4 मंदिरों में हरिजनों को प्रवेश मिला।

23 नवम्बर 1933 को महात्मा गांधी के आगमन-प्रवास के समय लारी स्कूल में विशाल सभा का आयोजन किया गया। वहां पर मंगलचरण के रूप में आपने इस कविता का पाठ किया:-

पधारो हे शबरी के राम, हमारा सविनय तुम्हें प्रणाम।
हे अखण्ड सेवाव्रत धारी, हरिजन बन्धु अकाम ।
नव जीवन की ज्योति जगाते, आये जग अभिराम।
जन चातक के आश तुम्हीं हो, मनमोहन घनश्याम।
कृत मंजु मेखला, कोसल भूमि ललाम।

चलकर शुभ चरण चिन्ह पर अमर करे निजनाम।
यह अतीत दंडक वनप्यारा ये. ' सिद्धि का धाम

यति जी जैन मतावलंबियों के गुरू थे। हमेशा हजारों की संख्या में लोग उनके भाषण सुनने को एकत्र होते थे। 9 अप्रेल 1941 को जेल से छूटकर 10 अप्रेल को यति जी रायपुर पहुंचे। 1942 में उन्हें गिरफ्तार कर जेल में रखा गया। जेल से छूटने के वाद 1946-49 तक वे रायपुर जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद पर कार्यरत रहे।

महासमुंद में उनके द्वारा स्थापित आश्रम और चिकित्सालय, मगन पुस्तकालय में उनकी सुरभित स्मृति आज भी कण-कण में व्याप्त है। 19 जुलाई 1976 को महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी और परम तपस्वी यति जी का देहावसाान वंवई में हो गया।

महंत लक्ष्मीनारायण दास :

आप पं. रविशंकर शुक्ल के दाहिने हाथ माने जाते थे। 12 मार्च 1930 को गांधी जी ने सावरमती आश्रम से दाण्डी मार्च किया और 6 अप्रेल 1930 को नमक वनाकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सूत्रपात किया। जून माह की 25 तारीख को रात के तीन बजे इन सभी लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। वामनराव लाखे, महंत लक्ष्मीनारायण दास, ठाकुर प्यारेलाल सिंह, शिवदास डागा, मौलाना रऊफ। महंतजी का जन्म 29 मई उत्तर प्रदेश के बांदा जिले के राजपुर ग्राम में हुआ था। छः माह की आयु में वे पितृ छाया से वंचित हो गये और 8 वर्ष की आयु में जैतूसाव मठ में महंत पद पर आसीन हुए।

उनका राजनैतिक जीवन वहुत प्रशंसनीय है। वे 1920 में कांग्रेस से जुड़े। अगले ही वर्ष वे प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्य निर्वाचित हुए 1968 तक वे इसी पद पर रहे। 14 वर्षों तक प्रदेश कांग्रेस कमेटी के उपाध्यक्ष और कोषाध्यक्ष भी रहे। 1918 से 1937 तक लगातार रायपुर नगर पालिका के सदस्य चुने जाते रहे। 1924 से 1948 तक रायपुर जिला कांग्रेस कमेटी में मंत्री एवं 1948 से 1956 तक अध्यक्ष रहे। सेन्ट्रल कोऑपरेटिव बैंक और लैंडमार्डगेज बैंक के 1948 से 1971 तक अध्यक्ष रहे। कमला देवी संगीत महाविद्यालय, श्री राम संगीत महाविद्यालय, लक्ष्मीनारायण विद्या मंदिर, वामनराव लाखे उ.मा. शाला के अध्यक्ष और गांधी शताव्दी समिति के अध्यक्ष रहे। उन्हें जेल यात्रा के दौरान 1930, 40-41 और 42 में रायपुर, अकोला, सिवनी और बेलोर जेल में रखा गया। उनके प्रयत्नों से 2 अक्टूबर 1930 को खादी भंडार की स्थापना ले सकी। इन महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी का निधन 15 मार्च 1987 को हो गया। महंत लक्ष्मीनारायण दास जी के जीवन में संत और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी दोनों की भूमिका समान रूप से दिखाई देती है।

श्री देवी प्रसाद वर्मा,
मान सरोवर विद्यालय के सामने,
1, नगर मार्ग, चौबे कालोनी, रायपुर
फोन - 0771- 2254053

छत्तीसगढ़ की संत परम्परा

–आचार्य रमेन्द्र रघुनाथ मिश्र

भारतीय इतिहास में छत्तीसगढ़ भू-भाग का अपना विशिष्ट महत्व है। उत्तर दक्षिण एवं पूर्व पश्चिम् क्षेत्र को सम्बद्ध करने वाली यह एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक कड़ी रही है। दक्षिण कोसल, दण्डकारण्य, गोंडवाना, झारखण्ड, महाकोसल, पश्चिमी उत्कल, पूर्वी विदर्भ आदि भू-भागों से परिवेष्ठित या स्पर्शयुक्त सीमा से प्रभावित "छत्तीसगढ" संत परम्पराओं का गढ़ रहा है। परिणामतः अतीत से अद्यतन सर्वधर्म समभाव एवं समाजिक समरसता यहां की विशेषता रही है। रेणुका, इंद्रावती एवं शिवनाथ, महानदी, घाटी की सभ्यता ने सदियों से छत्तीसगढ़ की माटी में विकसित परंपराओं को देखा है।

मानव के अविर्भाव काल से आधुनिक विकास काल तक की सांस्कृतिक विकास यात्रा की परम्परा का यदि हम अध्ययन, अन्वेषण करें तो छत्तीसगढ़ की अपनी एक विशिष्टता दृष्टिगत होती है। देश में महाजनपदकाल के वाद राजनीतिक केंद्रीय सत्ता की स्थापना मौर्यकाल से विकसित हुई तब समाज में वैदिक परम्पराओं एवं आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व हुई सांस्कृतिक चेतना की विकसित अवधारणाओं ने संत परम्परा को एक दिशा दी। छत्तीसगढ़ व्यापारिक विकसित केन्द्र तो था ही जो हमें मल्हार या सिरकट्टी के पुरावशेषों से ज्ञात होता है पर स्वर्णयुगीन परम्परा में सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महाशिवगुप्त बालार्जुन के नेतृत्व में उनकी माता वासटा के मार्गदर्शन में मगध एवं छत्तीसगढ़ की समन्वित परंपरा विकसित हुई। जिससे मिथिला एवं दक्षिण कोसल के मध्य तंत्र, दर्शन, चिंतन तथा अध्ययन अन्वेषण का सम्बंध स्थापित हुआ। नागार्जुन की चर्चा भी महत्वपूर्ण है। चीनी यात्री हेनसांग का सिरपुर आना भी यहां की विकसित परम्परा का द्योतक हे।

छत्तीसगढ़ ऋषि-मुनियों की तपोभूमि भी रही है। जिनका चिंतन राजनीतिक नहीं अपितु सामाजिक चेतना को विकसित करना था, इस संदर्भ में अनेक विद्वानों के नाम परंपराओं के अनुरूप लिये जाते हैं। जिन्होंने यहां के जनर्जीवन को प्रभावित किया। अगस्त्य के दक्षिणापथ प्रवास से लेकर वाल्मीकी, श्रृंगी, अत्रिऋषि, शंकराचार्य, मण्डन मिश्र के चिंतनदर्शन तक की चर्चा अमरकंटक घाटी से लेकर सिहावा अंचल तक होती है। छत्तीसगढ़ नें प्राचीन चिंतन दर्शन सदियों तक विद्यमान रही इसका एक कारण यह भी था कि यह क्षेत्र अरण्याच्छादित एवं गिरि श्रृखलाओं से आच्छादित होने के कारण बाहरी आक्रमणों से प्रायः अप्रभावित रहा। परिणामतः कलचुरिकालीन छत्तीसगढ़ में सांस्कृतिक विकास का अवसर मिला। चंपारन में भी श्री वल्लभाचार्य के जन्म ने भारत में संत परंपरा को एक अध्यात्मिक प्रेरणा दी।

युग प्रवर्तक एवं क्रांतिकारी सामाजिक परिर्वतन के प्रणेता महात्मा कबीर की विचारधाराओं ने उनके शिष्य धर्मदास के माध्यम से कबीरधाम, कुदुरमाल एवं दामाखेड़ा में संत परंपरा को विकसित किया। एक ऐसी मानवतावादी विचारधारा का यहां विकास हुआ जिसने छत्तीसगढ़ में कबीर पंथी चेतना को प्रेरणा दी परिणामतः समाज में अहिंसा, शांति, सौहार्द्रता का संदेश गया।

19वीं शताब्दी के भारतीय पुनर्जागरण काल में छत्तीसगढ़ में गुरूघासीदास के विचारों ने संत परंपराओं की सदियों की अवधारणाओं को इस अरण्यांचल में एक नई दिशा दी। रंगभेद, जातिभेद, नारियों के प्रति सम्मान, पशुवत व्यवहार का त्याग, अहिंसा का मार्ग अवलंवन आदि सद्गुणों को उन्होंने सहज, सरल रूप से जन-जन के मन तक पहुंचाने का प्रयास किया।

कबीर एवं सतनाम विचारधारा ने छत्तीसगढ़ की जीवनधारा वदल दी। सामाजिक जागृति ने राजनीतिक चेतना को विकसित किया। मराठा युग की संत परंपरा का प्रभाव भी यहां पड़ा परिणामतः आंग्ल प्रशासन के प्रतिरोधात्मक आंदोलनों में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही जिससे सार्वजनिक भावना विकसित हुई।

छत्तीसगढ़ में संत परंपरा के विकास एवं उसके प्रभाव पर व्यापक शोध कार्य की आवश्यकता है। संगोष्ठियों के माध्यम से चिंतन, मनन एवं चर्चा से इस दिशा में एक नई तलाश होगी जो संभावनाओं के अनुरूप फलीभूत होगा। मानवजीवन एवं समाज के विकास में संत परंपराओं का महत्वपर्णू योगवान रहा है।

आचार्य रमेन्द्र रघुनाथ मिश्र
विश्वविद्यालय परिसर, रायपुर (छ.ग.)

छत्तीसगढ़ में संत परम्परा

- परदेशीराम वर्मा

संतों और साधुओं के लिए यह काव्यमय बहुप्रचलित मान्यता है - संत हृदय नवनीत समाना और साधु चरित सुभसरिस कपासू। छत्तीसगढ़ में संतों की परंपरा पर विचार करते हुए वैराग्य से संबंधित दो अलग-अलग प्रवृत्ति पर भी ध्यान जाता है। निवृत्तिपरक वैराग्य और प्रवृत्तिपरक वैराग्य। निवृत्तिपरक वैराग्य से जुड़े संत घर-परिवार और मनुष्य की सामान्य जीवन स्थितियों से अलग विशिष्ट जीवन शैली अपनाने वाले किन्तु प्रवृत्तिपरक वैराग्य से जुड़े संत गृहस्थ और समाज के स्वीकृत सामान्य चर्या से बंधे रहकर भी विरागी जनसेवी होते हैं। गालिब ने ऐसी दुर्लभ जीवनचर्या पर ही शायद कहा है ..

"दुनिया में हूं, दुनिया का तलबगार नहीं हूं,
गुजरा हूं बाजार से, खरीददार नहीं हूं।"

सांसारिक व्यक्ति की तरह परिवार का भरण पोषण करने वाले संतों की पंरपरा में छत्तीसगढ़ को सत्य, अहिंसा, दया, समता का पाठ पढ़ाने वाले संत धर्मदास जी आते हैं। वे बांधवगढ़ के प्रसद्धि धनपति थे। वैश्य (साहू) परिवार में जम्में धर्मदास जी ने कबीर का सान्निध्य प्राप्त किया और उनके जीवन की धारा बदल गई। उन्हें सदगुरू कबीर का सत्संग प्राप्त हुआ, उन्हें लगा कि अभी तक का उनका जीवन व्यर्थ चला गया। कबीर साहब को बांधोगढ़ ले जाकर संवत् 1520 में विशाल संत समागम समारोह का आयोजन धर्मदास जी ने करवाया। सुप्रसिद्ध कसौधन परिवार में जन्मे जुड़ावन साहू ही कबीर से दीक्षा लेकर धर्मदास साहेब के रूप में वंदित हुए।

धर्मदास जी ने जगन्नाथपुरी में समाधि ली। वे जब जगन्नाथ पुरी पहुंचे तब उनके जीवन के मात्र तेरह दिन ही शेष थे। वहीं उन्होंने देह त्याग किया। कबीर ने चूरामणि नाम साहब को उनकी गुरूवाई गद्दी 1570 में सौंपी। चूरामणि नाम साहब बांधोगढ़ छोड़ हसदो नदी के किनारे चलते हुए कोरबा पहुंचे, फिर कुदुरमाल। चूरामणि नाम साहब 60 वर्षों तक गुरूवाई गद्दी पर रहे। कुदुरमाल में उन्होंने गद्दी स्थापित की। चूरामणि नाम साहब से लेकर सुरति सनेही नाम साहब तक आते-आते कुदुरमाल, रतनपुर, धमधा आदि स्थानों पर कबीर पंथ से जुड़े संतों के प्रमुख स्थान स्थापित हुए।

संवत् 1953 में दामाखेड़ा में गुरू गद्दी स्थापित हुई। बेमेतरा क्षेत्र के कूर्मि भक्तों ने दामाखेड़ा ग्राम को खरीद लिया और यहीं संवत 1960 में कर्बार पंथियों का विराट मेला लगा। दामाखेड़ा कबीर पंथियों का प्रमुख धर्मस्थल है। कबीर के अद्वैतवाद, शब्द सुरति योग, निर्मल भक्ति आदि समस्त आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार में धर्मदास जी प्रथम माने जाते हैं।

प्रवृत्तिपरक वैराग्य के अप्रतिम उदाहरण धर्मदास जी सद्गृहस्थ थे। आंतरिक प्रेरणा एवं संस्कार ने उन्हें जागृत किया और गुरूकृपा प्राप्त कर वे छत्तीसगढ़ में कबीर वाणी फैलाने वाले संत के रूप में पूजे जाते हैं। उन्हें छत्तीसगढ़ी के पहले कवि के रूप में भी हम जानते-मानते हैं।

आडंबर, पाखंड, मूर्तिपूजा, बलि प्रथा, हिंसा, संग्रहीवृत्ति, पर-पीड़ा के खिलाफत का संदेश अपनी वाणी से कबीर के प्रथम अनुयायी संत धर्मदास जी ने दिया।

"सांई सेति सांच चलि, औरों से सुधि नांहि।
ना वे लंबे केश करूं, ना वे घरूड़ि मुड़ाय।।"

सीधा, सरल, आडंबरहीन जीवन जीने का पाठ संत धर्मदास ने सिखाया। धर्मदास जी की धर्मपत्नी सुलक्षणावती ही आमिन माता के रूप में साध्वी कहलाई। आमिन माता ने भी कबीर वाणी के संकलन एवं प्रचार-प्रसार में धर्मदास जी का भरपूर सहयोग किया।

कबीर की वाणी का संग्रह धर्मदास जी ने संवत् 1521 में किया। कबीरवाणी 'बीजक' के रूप में प्रसिद्ध है। जिसके तीन भाग हैं, रमैनी, सबद और साखी। इसमें हिन्दू, मुसलमानों की जड़ता, कट्टरता, हिंसा के लिए समान रूप से फटकार, वेदान्त तत्व, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, प्रेमसाधना की कठिनाई, माया की प्रवलता, तीर्थाटन की असारता, हज, नमाज, व्रत, आराधना की गौणता इत्यादि के प्रसंग हैं।

छत्तीसगढ़ के जनजीवन में आडम्वरहीनता, सरलता, प्रेम, सद्भाव, मेल-मिलाप, क्षमा आदि का जो सात्विक एवं प्रेरित करने वाला गुण है, यह संतों की वाणी को आत्मसात करने की शक्ति के कारण ही है। इसे कवीर के शिष्य संत धर्मदास जी ने जन-जन में प्रसारित किया। धर्मदास जी के बाद इस अंचल को संत गुरूवावा घासीदास जी ने सद्ज्ञान दिया।

पांडित्यपूर्ण शैली में ज्ञान की बातें कही और लिखी जा चुकी थी। अधिकांश दलित, पिछड़े, वनवासी जन अशिक्षित थे। ऐसे दौर में गुरूबावा घासीदास ने उन्हीं की भाषा में उनके जीवन के सुधार के लिए सीधी सरल वातों को भिन्न-भिन्न माध्यम से व्याख्यायित किया। बाबा जी ज्ञान से भरे उद्धारक की मुद्रा में आने वाली तेजस्वी सिद्धों की परंपरा से हटकर भाव से भरे हुए जन-जन के दुख से पीड़ित प्रेरणाश्रोत के रूप में आए। उन्होंने संसार की असारता पर नहीं बल्कि तरह-तरह की वर्जनाओं और सीमाओं के कारण असार हो रहे जीवन को केन्द्र में रखकर वैचारिक क्रांति का शंखनाद किया।

धार्मिक कट्टरता एवं पाखंड से उपजे ऊंच-नीच और जात-कुजात के विचार से पीड़ितजनों का सम्बल वनकर बावा घासीदास आये। संतों की परंपरा में गुरूवावा घासीदास सरल भाषा, जीवनशैली स्वभाव और सद्भाव से परिचालित जन के बीच आए और उन्हें अमर सात सिद्धांतों के माध्यम से जागृत कर एक परंपरा सौंपकर चले गए।

जीव-हिंसा, पर-पीड़ा, नशा, मूर्तिपूजा का उन्होंने न केवल विरोध किया बल्कि आंदोलन चलाकर इसे खत्म भी किया। संत गुरू वावा घासीदास ने दन्तेवाड़ा में बलि प्रथा को बंद कराया। यह जानकर शायद आज की पीढ़ी को आश्चर्य हो कि न केवल पशु बलि प्रथा वल्कि नरबलि प्रथा भी तब प्रचलित थी। बाबा जी ने हर तरह की हिंसा का विरोध किया।

पंथी गीतों के रूप में वावाजी के अमर संदेश को हम आज सुनते हैं। इन गीतों में संत गुरू बाबा घासीदास का जीवनचरित तो होता ही है, उनके संदेश भी सरल शब्दों में पिरोये जाते हैं। नृत्य एवं गीत के साथ अनोखी प्रस्तुति होती है।

संभवतः छत्तीसगढ़ ही वह अनोखा क्षेत्र है जहां कबीर के शिष्यों ने चौका आरती गाते हुए धीरे-धीरे मशाल नाच को स्वरूप दिया। यही मशाल नाच वाद में नाचा की यात्रा की कड़ी के रूप में सम्बल बना। नाचा गीतों में कवीर के दर्शन का गहरा प्रभाव हमें मिलता है। गुरूवावा घासीदास के संदेश पंथी गीतों के माध्यम से न केवल देश में वल्कि विदेशों में भी अनुगूंजित है तथा छत्तीसगढ़ में समाज सुधारक और उद्धारक की भूमिका में अविस्मरणीय योगदान एक महानतम उपलब्धि है।

लोक-परलोक के अवूझ संसार को नहीं वल्कि इस लोक में समानता एवं सम्मान के महत्व को ही उन्होंने समझा-समझाया। इसी क्रम में प्रसिद्ध संत गहिरा गुरू का नाम आता है।

रायगढ़ क्षेत्र में स्थित गहिरा गांव से जुड़ाव के कारण गहिरागुरू के रूप में समादृत इस संत ने क्षेत्र में नशामुक्ति और शिक्षा की दृष्टि से अनोखा कार्य किया। कैलाश गुफा विद्यालय आश्रम के माध्यम से शिक्षा एवं संस्कृति के क्षेत्र में गहिरा गुरू ने जागृति का अलख जगाया। स्वाभिमानी छत्तीसगढ़ की परिकल्पना के अनुरूप गहिरा गुरू ने जीवनभर प्रयोगात्मक आंदोलन चलाकर इतिहास रचा। शराव विरोधी आंदोलनों में सरगुजा क्षेत्र की महिलाओं को अपने ज्ञान से आंदोलित करने वाली राजमोहिनी देवी भी इसी परंपरा में समादृत मानी जाती हैं। उन्हें भी संतों के समान सम्मान प्राप्त है।

तपस्वी संत रूक्खड़नाथ जी छुईखदान एवं कवर्धा के संत प्रियादास जी ने भी छत्तीसगढ़ के जनजीवन को प्रभावित किया। जन-जन से जुड़कर इन्होंने आंतरिक और बाह्य गुलामी की श्रृंखला को तोड़ने का मंत्र दिया।

छत्तीसगढ़ के संतों की परंपरा में स्वामी आत्मानंद जी का विशिष्ट स्थान है। 6 अक्टूबर 1929 में ग्राम बरबंदा में जन्मे बालक रामेश्वर ने ही आगे चलकर स्वामी आत्मानंद के रूप में ज्ञान का आलोक फैलाया। छुटपन में उन्हें तुलेन्द्र भी कहा जाता था। स्वामी जी छुटपन में वर्धा आश्रम में अपने शिक्षक पिता श्री धनीराम वर्मा के साथ रहे। उन्हें बचपन में गांधी जी का स्नेह प्राप्त हुआ। नागपुर विश्वविद्यालय से एम.एस.सी. (गणित) की परीक्षा में स्वर्णपदक प्राप्त करने वाले अत्यंत मेधावी स्वामी आत्मानंद ने रामकृष्ण मिशन की रायपुर शाखा को स्थापित कर एक इतिहास रच दिया। स्वामी विवेकानंद ने बाल्यकाल के कुछ वर्ष रायपुर में बिताया था। इसलिए भी रायपुर में आश्रम खोलने के लिए स्वामी आत्मानंद संकल्पित थे, लेकिन इसके लिए उन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। असहमति का दंश भी उन्होंने झेला। लेकिन अंततः रामकृष्ण विवेकानंद विचार धारा के इस प्रेरक केन्द्र की स्थापना में वे सफल हो गए।

3 अगस्त 1985 को स्वामी जी ने बस्तर जिले के अबूझमाड़ में आदिवासियों के लिए बनवासी सेवा केन्द्र प्रारंभ किया। यहां 50 शैय्या वाला बड़ा अस्पताल, चल-चिकित्सालय तथा शाला का संचालन होता है। शिक्षा के क्षेत्र में नारायणपुर की शाला ने ऐतिहासिक योगदान दिया है। उद्भट विद्वान स्वामी आत्मानंद ने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में सेवा का कार्य किया। 1964-65 के अकाल में गांवों में आश्रम की ओर से राहत कार्य भी खोले गये। रायपुर में भी संस्था द्वारा संचालित निःशुल्क चिकित्सालय है। यहां पुस्तकालय की समृद्धि देखते ही बनती है।

दक्षिण कोशल के रूप में इतिहास में चर्चित इस अंचल को वनांचल और तपोभूमि कहलाने का गौरव प्राप्त है। लोक मान्यता के अनुसार वशिष्ठ, अत्रि, जमदग्नि, वाल्मीकि, लोमश, श्रृंगी, अगस्त्य, अंगिरा, सरभंग, नाट्याचार्य भरत के आश्रम इस पुण्यभूमि में ही थे।

सत एवं संत के लिए छत्तीसगढ़ की विशेष पहचान है। अहिंसा और प्रेम छत्तीसगढ़ का स्वभाव है। सेवा इसका चरित्र। परमार्थ इसका जीवनसूत्र और सत्कार, सहयोग, संगीत, सुर और सहदृशता इसके आचरण में समाहित हैं।

परदेशीराम वर्मा
एल.आई.जी. 18,
आमदीनगर हुडको,
भिलाई नगर - 490009, छत्तीसगढ़

राज्य स्तरीय संगोष्ठी का आयोजन

'छत्तीसगढ़ी अभिव्यक्ति'

23 एवं 24 मार्च 2004

दिनांक 23.3.04

उद्घाटन सत्र - 11.00-12.00 बजे

संगोष्ठी प्रथम सत्र - 12.15 से 02.30 बजे

छत्तीसगढी भाषा-व्यंजकता

अध्यक्षता - डॉ. पालेश्वर प्रसाद शर्मा
आधार लेख - डॉ. विहारीलाल साहू
मुख्य वक्ता - डॉ. विनयकुमार पाठक, डॉ. चितरंजन कर, श्री लक्ष्मण मस्तुरिया
अन्य वक्ता - डॉ. मन्नूलाल यदु, डॉ. व्यास नारायण दुबे, श्री हरिहर वैष्णव आदि।

द्वितीय सत्र - 03.30 से 06.30 बजे

छत्तीसगढ के खेल, बाल-गीत एवं व्यंजन

अध्यक्षता - श्री श्यामलाल चतुर्वेदी
आधार लेख - श्री प्रताप ठाकुर - खेल एवं बाल-गीत
- डॉ. रत्नावली सिंह - छत्तीसगढ़ के व्यंजन
मुख्य वक्ता - श्री नंदकिशोर तिवारी, डॉ. निरुपमा शर्मा, श्रीमती शान्ति यदु
अन्य वक्ता - श्री वद्रीसिंह कटहरिया, श्री रसिक विहारी अवधिया, श्रीमती मृणालिका ओझा, श्रीमती शकुन्तला तरार, श्री चंद्रशेखर चकोर आदि।

सांस्कृतिक कार्यक्रम - 07.30 से 9.00 बजे

दिनांक 24.3.04

तृतीय सत्र - सुबह 10.00 से 1.00 बजे

छत्तीसगढ की संत परंपरा

अध्यक्षता - श्री स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी
आधार लेख - डॉ. सत्यभामा आडिल
मुख्य वक्ता - डॉ. देवीप्रसाद वर्मा, डॉ. रमेन्द्रनाथ मिश्र, श्री विमल पाठक, श्री परदेशीराम वर्मा, श्री जागेश्वर प्रसाद
अन्य वक्ता - डॉ. बलदेव, डॉ. केशरीलाल वर्मा, डॉ. गंगाप्रसाद डनसेना आदि।

समापन सत्र - 02.00 से 04.00 बजे

print - shriram printers 0771 2283780

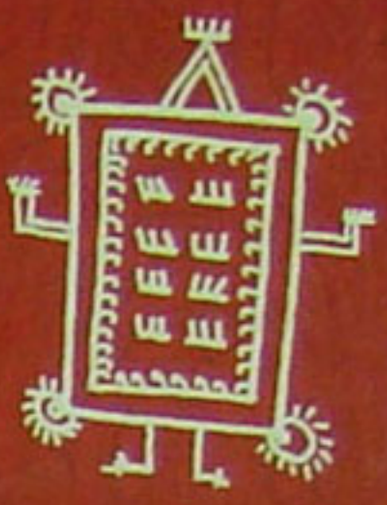

कार्यक्रम की रूपरेखा

23.03.04, मंगलवार

शुभारंभ सत्र - 11.00 - 12.00 बजे

प्रथम सत्र - 12.15 - 02.30 बजे
छत्तीसगढ़ी भाषा-व्यंजकता

द्वितीय सत्र - 03.30 - 06.30 बजे
छत्तीसगढ़ के खेल, बाल-गीत एवं व्यंजन

24.03.04, बुधवार

तृतीय सत्र - 10.00 - 01.00 बजे

छत्तीसगढ़ की संत परंपरा

समापन सत्र - 02.00 - 04.00 बजे

इस अवसर पर छत्तीसगढ़ के पारंपरिक खेलो पर प्रर्दशनी एवं 23 मार्च को सायं 7.30 बजे टाउन हाल में सांस्कृतिक संध्या भी आयोजित है ।